

गल्प-पारिजात



संग्रहकर्त्ता तथा संपादक

सूर्यकान्त एम. ए., डी. लिट. (पंजाब), डी. फिल. (ऑक्सन),
यूनिवर्सिटी रीडर इन संस्कृत
लाहौर

प्रकाशक

मेहरचंद्र लक्ष्मणदास
संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता
लाहौर

1938

प्रकाशक—

लाला तुलसीराम जैन, मैनेजिंग
प्रोप्राइटर, मेहेरचंद्र लक्ष्मणदास,
संस्कृत हिंदी पुस्तक विक्रेता,
सैदमिट्टा बाज़ार, लाहौर।

All Rights reserved by the publishers.

हमारी आज्ञा बिना कोई महाशय इस पुस्तक की कुर्जी
आदि न बनाए, अन्यथा कानून का आश्रय लेना पड़ेगा।

मुद्रक—

लाला खज़ानचीराम जैन,
मैनेजर, मनोहर इलेक्ट्रिक प्रेस,
सैदमिट्टा बाज़ार, लाहौर।

भूमिका

कहानी वालकों की अपनी चीज है। रात को भोजनोपरांत पाठशाला का काम एक ओर रख वे बड़ी-बूढ़ियों को भूत, प्रेत, राजा, रानी और उनके उड़नखटोले की कहानी सुनाने पर बाध्य करते हैं। कहानी से जितना प्रेम बच्चों को है, उतना ही बड़े-बूढ़ों को। पहर रात गए लाला जी दूकान से थके आते हैं और भोजन कर या तो रामायण आदि की कथा सुनते हैं अथवा सिनेमा जाकर प्रेम-कथानक देख मन वहलाते हैं। गाँव की चौपालों में भी रात को हुक्के पर अकबर-बीरबल के चुटकले चलते हैं।

कहानी की इतनी व्यापक लोकप्रियता क्यों ? इसलिये कि इसमें सुनने और पढ़नेवालों को अपने जीवन का चमत्कारी प्रतिफलन दीख पड़ता है; इसमें उन्हें अपनी दैवी, मानुषी और आसुरी वृत्तियाँ सामने खड़ी दृष्टिगत होती हैं। वह

दैनिक परिस्थिति और वह प्रतिदिन की कार्यश्रृंखला, जिसमें वे अपना जीवन विताने आए हैं, कहानी की परिधि में आ एकदम बदल जाती है। यहाँ पहुँच उस पर कल्पना की कुँची से सोना फिर जाता है। प्रतिदिन के वास्तविक घटनाजाल पर कल्पना का मुलम्मा लगने में ही कथा-साहित्य का प्रादुर्भाव है।

कहानी के साथ मनुष्य का यह प्रेम आज का नहीं, अपितु उस दिन का है, जब कि वह ईव के उपवन में झूमने वाले तरुराज का मादक फल चख, भौतिक जीवन में दीख पड़ने वाले सुख-दुःखों की पिटारी को हृदय में छिपा, स्वर्ग से धगधाम पर उतरा था और पूर्व दिशा में सुमेरु के पीछे फूटने वाली उषा के अरुण प्रसर को देख उसके स्तोत्र के रूप में उसका अंतरात्मा प्रवाहित हो चला था। आर्यों के प्राचीनतम साहित्य वेद में आने वाले यम-यमी, सरमा-पणि, दुष्यंत-उर्वशी आदि के लाक्षणिक कथानकों में यही बात देख पड़ती है। उसके उपरान्त ब्राह्मणों तथा आरण्यकों में कहानी स्पष्ट रूप धारण कर लेती है और पीछे आने वाले महाभारत, रामायण, काव्य, नाटक, चंपू आदि में तो उसकी छलछलानी धारा वह निकलती है। संस्कृत के पंचतंत्र, हितोपदेश-आदि ग्रंथों में विकसित हुआ कथा-साहित्य कथासरित्सागर में पग्निष्ठा का प्राप्त होता है।

किंतु स्मरण रहे, संस्कृत की उत्तराधिकारिणी होने पर भी हिंदी ने इस क्षेत्र में अपनी जननी से कुछ नहीं पाया।

अपने वर्तमान रूप में कहानी उसे परम्परया अंग्रेजी साहित्य से प्राप्त हुई है। मार-धाड़ और दौड़-धूप के व्यावसायिक युग में प्रकाशित होने वाली अंग्रेजी मासिक-पत्रिकाओं ने, मिलों में, १२½ से १½ तक मिलने वाली एक घंटे की छुट्टी में, लंच खाकर भी समाप्त की जाने योग्य छोटी छोटी चलती कहानियों का खुले हाथों स्वागत किया और पश्चिम में इस प्रकार के कथा-साहित्य को आशातीत प्रगति मिली। कुछ काल पश्चात् इन्हीं आख्यायिकाओं के आधार पर बंगला में बड़े भव्य गल्पों की शृंखला चली, जिनमें बड़े ही मार्मिक और भावव्यंजक ऐतिहासिक या सामाजिक खंडचित्र रहते थे। उन्हीं के अनुकरण पर, हिंदी में, सब से पहले बाबू गिरिजाकुमार घोष ने, लाला पार्वतीनंदन नाम से सरस्वती पत्रिका में इस प्रकार की आख्यायिकाएँ खड़ी की। शनैः शनैः इंदु आदि पत्रों ने साहित्य के इस उपेक्षित अंग को अपनाया और कुछ ही वर्षों में हिंदी में आख्यायिका-लेखकों का खासा मंडल तैयार हो गया, जिनमें गुलेरी, प्रसाद, प्रेमचंद, कौशिक, सुदर्शन, हृदयेश, चतुरसेन, राय कृष्णदास, व्यास, जैनेंद्रकुमार और वियोगी आदि के नाम उल्लेखयोग्य हैं।

एक शब्द कहानी लिखने की कला पर। कहानी लिखने समय उसके छः अंग अर्थात् प्लॉट, पात्र, कथोपकथन, देश-काल, शैली और उद्देश्य पर ध्यान रखना आवश्यक है। कहना न होगा कि आख्यायिका उपन्यास की अपेक्षा कहीं अधिक

छोटी होती है, और अवकाश के समय एक ही बैठक में समाप्त की जा सकती है। उसका प्रतिपाद्य विषय ऐसा होना चाहिये जिसका, कहानी की नियंत्रित सीमा में, भलीभाँति निर्वाह और विकास हो सके। उसका उद्देश्य और आधारभूत ध्येय एक होना चाहिये और आदि से अंत तक उसी को लक्ष्य में रखकर उसी के परिपोष और परिपाक के लिये कहानी लिखी जानी चाहिए। अनपेक्षित प्रसंगों का उसमें काम नहीं, अनावश्यक वर्णनों के लिये उसमें स्थान नहीं। कहानी की प्रत्येक पंक्ति घटनाओं के क्रमिक विकास में लड़ी का काम देती है; उसकी पहली पंक्ति में ही सिनेमा के ऑपेरेटर की स्फूर्ति होती है; उसका शीर्षक ही मोटर की हेडलाइट का काम देता है।

कहानी लिखने में पाठकों की रुचि का ध्यान रखना आवश्यक है। कुशल लेखक को भलीभाँति परखकर पहले यह आँकना होता है कि मेरी अमुक रचना का पाठकों पर अमुक प्रकार का प्रभाव पड़ेगा। उसी प्रभाव या परिणाम को लक्ष्य में रख वह घटनाओं की ऐसी संतति उपजाता है, जो अभीष्ट परिणाम के संपुटित करने में अचूक तथा अमोघ साधन सिद्ध हो। यदि उसके प्रारंभिक संदर्भ ने ही गर्भस्थ परिणाम पर खरी चोट न की तो समझो प्रथम ग्रास में ही मक्षिकापात हो गया। आदि से अंत तक रचना में ऐसा एक भी प्रसंग न होना चाहिए, जो पाठकों को अभीष्ट परिणाम की ओर अग्रसर न करता हो। इतने कौशल, इतने ध्यान और इतने उपकरणों द्वारा अंत में

जो चित्र प्रस्तुत होता है वही कलाकुशल पाठक की आत्मतुष्टि कर पाता है। बस, कहानी का शुद्ध और स्वच्छ रूप यही है; इसी के सफल उद्भावन में कथालेखक की इतिकर्तव्यता है।

यह बताना कठिन है कि किस घटना और किस प्रकार के लक्ष्य को ध्यान में रखकर कथा लिखी जानी चाहिए। बहुमुखेन्मेषी मानव-जीवन के किसी भी पहलू को लेकर चतुर कलाकार भव्य कथानक खड़ा कर सकता है; मूक प्रकृति की किसी भी विभूति को अपना वह उसके विकास की राम-कहानी कह सकता है। चेतन के प्रत्येक इंगित में उसके विलास और विकास की उत्कट आकांक्षा आंदोलित है; मूक जगत् के प्रत्येक स्पंदन में उसकी अगणित वर्षों की प्रखर तपस्या केंद्रित है। इनमें से किसी भी इंगित और किसी भी स्पंदन को ले कुशल चित्रकार उसके द्वारा जीवन के सघर्ष और अंतर्द्वंद्व की रूपरेखा खींच सकता है। जब कलाकार की प्रतिभा में इतनी तीव्रता और व्यापकता आ जाती है तब उसकी रचनाएँ विश्वजनीन बन जाती हैं, तब वे देश और काल की परिधि को पार कर साहित्यिक जगत् की स्थायी संपत्ति बन जाती हैं।

विश्वजनीन कृतियों की बात जाने दीजिए, क्योंकि इस कोटि की रचनाएँ किसी भी साहित्य में इनी-गिनी ही होती हैं। सामान्य श्रेणी की रचनाओं में, उनको निष्पन्न करने वाले सब उपकरणों के विद्यमान रहते हुए भी यदि देशकालोप-योगिता न बन पड़ी तो कला की दृष्टि से नवेली होने पर भी वे

पलाश के निर्गंध पुष्प की भाँई निरर्थक सिद्ध होती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए उपन्यास-सम्राट् प्रेमचंद जी ने अपनी रचनाओं में आदर्शवाद को प्रधानता दी है, जिसका परिणाम यह है कि उनकी अमर कृतियों में हम स्थान स्थान पर मुक्त-केशिनी, विधुरवदना भारतमाता के मूक रुदन को मुखरित हुआ पाते हैं; जगह जगह निर्गह भारत के दलित श्रमी समाज की गंभीर-विकृत मुखमुद्रा को दारिद्र्य के दारुण चित्रपट पर चित्रलिखित हुई देखते हैं।

और यही कारण है कि किशोगवस्था के छात्रों के लिये संकलित किए इस कथा-संग्रह में हमने उन्हीं कहानियों को स्थान दिया है जो कथा-साहित्य की सब विभूतियों से विभूषित होने के साथ साथ छात्रों के चित्र को उज्ज्वल बनाने में और उनके विकासोन्मुख हृदयों में दयादाक्षिण्य, वीरता, शौर्य तथा देश-भक्ति के भाव अंकुरित करने में अमोघ साधन सिद्ध हों।

उसने कहा था, यही मेरी मातृभूमि है, दिल की रानी, निर्मम, भिन्नराज और कुणाल आदि कहानियों की पंक्ति पंक्ति से उदात्त भाव, गंभीर वेदना और पावन विचार फूटे पड़ रहे हैं। जहाँ एक ओर भिन्नराज, विचित्र स्वयंवर और कुणाल आदि कहानियों को पढ़कर पाठक का हृदय दयादाक्षिण्यादि उदार भावों से आप्लावित हो जाता है, वहाँ विद्रोही (शक्तिसिंह) और निर्मम नामक कहानियों में उस अतीत भारत के क्षत्रियों की वे सभी वदान्य भावनाएँ और

शौर्य कृतियाँ केंद्रित हुई दृष्टिगत होती हैं, जिनको स्मरण कर यह जरत्काय, ईश्वर भारत आज भी साभिमान अनुप्राणित है। वे वधे, विवाता, अपना अपना भाग्य आदि प्रसंगों को पढ़ भारत की वे दारुण दवड़ियाँ हमारी आँखों में धूम जाती हैं, जिनमें तमतमाते भुवनभास्कर की धधकती भट्टी के नीचे, जेठ की दहाड़ती धूप में हमारे अगणित, नादान भाईवंद, भूखे और प्यासे, भुन भुनकर, झुलस झुलस कर, तड़पतड़प कर, डबडवाई आँखों प्राण त्याग देने हैं। संसार के सभी सभ्य, स्वतंत्र देशों के युवक आज विज्ञान के बल पर, मनुष्य और प्रकृति की ओर से आने वाली इन आपदाओं पर विजय प्राप्त करने में प्रयत्नशील दीख पड़ते हैं। 'यही मेरी मातृभूमि है आदि प्रसंगों को पढ़, वह कौन-सा अभागा भारतीय होगा, जिसके हृदय में देश-भक्ति और कर्तव्यनिष्ठा के सोग्र भाव न जाग पड़ेंगे और जो स्वाभिमानी अस्मिता की नाई स्वतंत्रता की वल्लिखेदी पर अपना जीवन निष्ठावर करने को उद्यत न हो जायगा।

उमने कहा था और सच के सौंद में हमारे जीवन के उन निभृत कानों की कथा छेड़ी गई है जो अत्यंत पवित्र तथा विविक्त होने पर भी दारुण आपदाओं के निविड अंधकार से आच्छन्न रहते हैं। इस प्रकार जहाँ एक ओर इस संग्रह की कहानियाँ कला की दृष्टि से सुतरां भव्य, प्रगल्भ तथा उत्कृष्ट संपन्न हुई हैं, वहाँ वे भावों की दृष्टि से भी बड़ी ही नवेली, अनूठी और चुटीली बन पड़ी हैं।

एक शब्द पारिजाति के संपादन के विषय में । आधुनिक संपादनकला का प्रमुख सिद्धांत यह है कि संपाद्य वस्तु के हस्तलिखित या मुद्रित पाठों में किसी प्रकार का भी परिवर्तन न कर उसे मौलिक रूप में प्रकाशित कर दिया जाय । हाँ, संपादक को इस बात का अधिकार अवश्य है कि वह संपाद्य वस्तु में पाई जाने वाली अशुद्धियों, असंगतियों तथा अन्य प्रकार के दोषों को फुटनोटों में दिखा दे । प्रस्तुत रचना में इस सिद्धांत का यथासाध्य पालन किया गया है, और यही कारण है कि प्रेमचंद की दिल की रानी नामक कहानी में आने वाले उर्दू शब्द जैसे के जैसे ही रहने दिए गए हैं और उनके अर्थ फुटनोटों में रखे गए हैं ।

स्वभावतः प्रत्येक लेखक की लेखन-प्रणाली अपनी निज होती है, और सब लेखकों का भाषा पर एक-सा अधिकार नहीं होता । हिंदी के कथालेखकों में खासी संख्या ऐसे लेखकों की है, जो उर्दू के क्षेत्र में मँजकर हिंदी के सामंत बने हैं । इस श्रेणी के लेखकों से, भाव और कला की दृष्टि से चाहे उनकी रचना कैसी ही चुटीली क्यों न संपन्न हुई हो, भाषा के औचित्य तथा सौष्ठव की आशा करना ऊसर में सोते ढूँढना है । इनमें से कतिपय ने हिंदी के वाक्य-विन्यास की स्वारसिकता को न अपना उसे भर-पेट तोड़ा मरोड़ा है; ठेठ उर्दू की शृंखला में संस्कृत के तत्सम शब्दों का ऐसा फूहड़ प्रयोग किया है कि ऐसे स्थानों पर संपादक से हस्तक्षेप किए बिना नहीं रहा गया, और वह संपाद्य वस्तु में परिवर्तन करने की अनधिकार चेष्टा कर ही बैठा है । साथ

ही इनमें से कुछ की रचनाओं में •कहीं कहीं धागप्रवाह का व्यतिक्रम, भावव्यंजना की उखड़-पुखड़, शब्दों और वाक्यों की शिथिल उठ-वेठ या उनका अलगविलगपन इस सीमा को पहुँच गए हैं कि उन्हें ठीक किण्विना इनकी रचनाओं को अवोध छात्रों के संमुख रखना अनुचित समझा गया है; संपादक ने ऐसे स्थलों पर भी यथेष्ट परिवर्तन किया है। जहाँ वाक्य-विन्यास के औचित्य ही की अनुचित उपेक्षा की गई हो, वहाँ लिये और लिए आदि के भेद की और अनुस्वार तथा अनुनासिकाक्षरों के सदुपयोग का कहना ही किया। जहाँ जगों में द्रष्टव्य न कर इन्हे मौलिक रूप में ही मुद्रित कर दिया गया है। निर्दोषकथालेखकों के अर्धविगम, विगम, उँस, हाडफन आदि के उपयोग को देखकर तो कैसे भी व्याकरणविद् का मस्तिष्क चकरा जायगा, इन्हे भी, कुछ स्थलों को छोड़, उँस का तँसा छाप दिया गया है।

प्रार्थना और आशा है कि उन प्रकाश की स्वटकेन वाली चुटियों पर भविष्य में निर्दोषकथालेखक ध्यान देंगे और कला और भावों की दृष्टि से सदा संपन्न हुई अपनी रचनाओं को भाषा की दृष्टि से भी परिमार्जित तथा परिपूरित बनाने का प्रयत्न करेंगे।

इस हार्दिक प्रार्थना के साथ ही उन सब कथालेखकों को कोटिशः धन्यवाद देते हैं, जिनकी मनोरंजक कहानियाँ पारिजात में उद्धृत की गई हैं। परमात्मा करे, उनकी कृतियों

अमर सिद्ध हों और वे ऐहिक अभ्युदय तथा पागलौकिक निःश्रेयस के भागी बनें ।

कहानियों के शुद्ध मुद्रण में मेमर्स मेहरचंद्र लक्ष्मणदास फर्म के अध्यक्ष लाला खजानचीगम जी ने और उनके मुद्रणालय के सुयोग्य निरीक्षक पंडित विजयानंद खंडूड़ी शास्त्री ने हमारी सहायता की है ।

कहानियों के निर्वाचन में मुझे अपनी सहधर्मिणी श्रीमती सुखदादेवी का अनुपम सहयोग प्राप्त हुआ है ।

शिमला }
१-९-३८ }

सूर्यकान्त

विषयानुक्रमणिका

पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी—	
उसने कहा था	३
श्रीयुत प्रेमचंद—	
यही मेरी मातृ-भूमि है	२२
दिल की रानी	३९
श्री जैनेंद्रकुमार—	
अपना अपना भाग्य	७३
निर्मम	८७
श्री चतुरसेन शास्त्री—	
भिक्षुराज	१०९
श्री नाथूराम प्रेमी—	
विचित्र स्वयंवर	१३३
कुणाल	१६६

पं० विनोदशंकर व्यास—

?

१७७

विधाता

१८०

विद्रोही

१९७

श्रीयुत मोहनलाल महतो—

वे वच्चे ।

२०७

श्रीयुत ऋषभचरण जैन—

परख

२२१

श्रीयुत सुदर्शन—

सच का सौदा

२३५

श्रीयुत गोविंदवल्लभ पंत—

जूठा आम

२६३

पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी

जीवन-परिचय

पंडित चंद्रधर के पूर्वज कोंगडा के रहने वाले थे; किंतु इनके पिता बाद में जयपुर जा बसे थे । शर्मा जी का जन्म संवत् १९४० में और मृत्यु संवत् १९६८ में जयपुर में हुई । बचपन में ही इन्होंने संस्कृत का अच्छा अभ्यास कर लिया था । सन् १९०३ में प्रयाग विश्वविद्यालय की बी. ए. परीक्षा पास की । इसमें वे प्रथम रहे थे ।

आपने जयपुर से समालोचक नामक मासिक पत्र निकाला था । इसमें आपने साहित्यिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा आलोचनात्मक लेखों की अच्छी शृंखला बॉधी थी ।

विषय की भिन्नता के साथ आपकी शैली में भी परिवर्तन देखता है । किंतु आपकी रचनाशैली की प्रधानता उसकी व्यावहारिकता में है । उसमें अनूठा चलतापन है । किसी विषय को सीधी साधी भांति प्रस्तुत करके, उसका प्रतिपादन करते समय छोटे छोटे मनोहारी वाक्यों की माला गुंथ कर, उसमें मुहाविरो का उचित उपयोग करके आप अपने विषय को सर्जीव बना देते थे ।

कहानियां इन्होंने केवल दो तीन लिखी हैं, किंतु वे ही इनके नाम को इस क्षेत्र में अमर करने के लिए पर्याप्त हैं । वस्तुतत्त्व, पात्र, कथोपकथन, वातावरण, शैली सभी की दृष्टि से ये कहानियां अनूठी संपन्न हुई हैं ।

‘उसने कहा था’ कहानी इनकी उत्कृष्ट रचना है । इसमें आदि से अंत तक गंभीर व्यंग्य की एक सूक्ष्म रेखा दीख पड़ती है । कहानी के आरंभ में पंजाबी शब्दों का प्रयोग करके उसे और भी अधिक रोचक बना दिया गया है ।

ने एक कुंदा साहब की गरदन पर मारा और साहब 'आह ! माई गाड' कहते हुए चित्त हो गये । लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया । जेबों की तलाशी ली । तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया ।

साहब की मूर्च्छा हटी । लहनासिंह हँसकर बोला—'क्यों लपटन साहब ? मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं । यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं । यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गाये होती हैं और उनके दो फ्रुट चार इंच के सींग होते हैं । यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं । पर यह तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहाँ से सीख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डेम' के पाँच लफ़्ज भी नहीं बोला करते थे ।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी । साहब ने मानों जाड़े से बचाने के लिये, दोनों हाथ जेबों में डाले ।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो बड़े हो पर माफ़े का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है । उसे चकमा देने के लिये चार आँखें चाहिएँ । तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था । औरतों को बच्चे होने के ताबीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था । चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहना

था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़कर उनमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिंदुस्तान में आ जायेंगे तो गोहत्या बंद कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—'

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की 'हैनरी मार्टिनी' के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है?'

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और, औरों से सब हाल कह दिया। बंदूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना ने साफ़ा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बंदूकों की बाड़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था—वह

खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर । अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे धुसे आते थे । थोड़े से मिनटों में वे—

अचानक आवाज़ आई 'वाह गुरु जी की फ़तह ! वाह गुरु जी का खालसा !' और धड़ाधड़ बंदूकों के फ़ायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे । ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये । पीछे से सूबेदार हज़ारसिंह के जवान आगे बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे । पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया ।

एक किलकारी और—'अकाल सिक्खों दी फौज आई ! वाह गुरुजी दी फ़तह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत श्री अकाल पुरुख !!!' और लड़ाई ख़तम हो गई । तिरिसेठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे । सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए । सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई । लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी । उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफ़ा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया । किसी को ख़बर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है ।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था । ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षपा' नाम सार्थक होता है । और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की

भाषा में 'दंतवीणोपदेशुचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रास की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर, उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लडाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई-वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से भटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ घंटे के अन्दर अन्दर आ पहुँची। फ्रील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायेंगे, इसलिये मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बाँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—'तुम्हे बोधा की क्रसम है और सूबेदारनी जी की सौगंद है जो इस गाड़ी में न चले जाओ'।

‘और तुम ?’

‘मेरे लिये वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिये भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं

है । देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास है ही ।’

‘अच्छ, पर—’

‘बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला । आप भी चढ़ जाओ । सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना । और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था वह मैंने कर दिया ।’

. गाड़ियाँ चल पड़ी थी । सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—‘तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये है । लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे । अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना । उसने क्या कहा था ?’

‘अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ । मैंने जो कुछ कहा, वह लिख देना और कह भी देना ।’

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया । ‘वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबंद खोल दे । तर हो रहा है ।’

५

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है । जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं । सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं । समय की धुंध बिलकुल उन पर से हट जाती है ।

+

+

+

+

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जानी है। जब वह पूछता है कि तेरे कुड़माई हो गईं ? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू ?' सुनते ही लहनासिंह को बहुत दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

‘वजीरासिंह, पानी पिला दे !’

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफ़ल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकद्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफ़सर की चिट्ठी मिली कि फ़ौज लाम पर जाती है। फ़ौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े में से निकल कर आया। बोला—‘लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा मिल आ।’ लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती

हैं ? कब से ? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं । दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा । असीस सुनी । लहनासिंह चुप ।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं ।'

'तेरी कुड़माई हो गई ?—घत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटे वाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्च्छा खुली । करवट बदली । पसली का घाव बह निकला ।

'बजीरा, पानी पिला'—'उसने कहा था ।'

स्वप्न चल रहा है । सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हूँ । मेरे तो भाग फूट गये । सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है । पर सरकार ने हम तीमियों की एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है । फ़ौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ । उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया ।' सूबेदारनी रोने लगी—'अब दोनों जाते हैं । मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टांगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था । तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे । आप घोड़े की लातों में

चले गये थे और मुझे ढठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था । ऐसे ही इन दोनों को बचाना । यह मेरी भिन्ना है । तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ ।’

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई । लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया ।

‘वजीरासिंह, पानी पिला,—उसने कहा था’ ।

+ + + + .

लहना का सिर अपनी गोदी पर रक्खे वजीरासिंह बैठा है । जब माँगता है, तब पानी पिला देता है । आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

‘कौन ? कीरतसिंह ?’

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—‘हाँ’ ।

‘भइया, मुझे और ऊँचा कर ले । अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले ।’

वजीरा ने वैसा ही किया ।

‘हाँ, अब ठीक है । पानी पिला दे । बस । अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा । चाचा-भतीजा दोनों यही बैठकर आम खाना । जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है । जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था ।’

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपकर रहे थे ।

+ + + +

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेल्जियम—६८ वी सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह ।

श्री प्रेमचंद

जीवन-परिचय

श्री प्रेमचंद का जन्म सन् १८९० में मढवा गाँव, जिला बनारस में हुआ। इनका असली नाम धनपतराय था। प्रेमचंद इनका उपनाम था; उनकी रचनाओं के कारण यही नाम प्रसिद्ध हुआ।

सन् १९०१ में इन्होंने लिखना आरंभ किया। उस समय ये उर्दू में लिखते थे; तब इनका उपनाम 'गुलाबराय' था।

प्रेमचंद प्रगल्भ उपन्यासकार तथा विदग्ध कथालेखक थे। उपन्यासक्षेत्रों में इनकी प्रेमा, सेवासदन, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, शबन, कर्मभूमि, नामक रचना प्रसिद्ध है और इनकी अमर कहानियाँ प्रेमद्वादशी, प्रेमपचीसी, मानसरोवर आदि में संगृहीत हैं।

इनकी कई कहानियों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। आपने बहुत दिन तक माधुरी, हस और जागरण का संपादन भी किया था।

इनकी रचनाओं में वस्तुविन्यास, चरित्रचित्रण, कथोपकथन की शृंखला, देशकाल का प्रतिबिंब, भाषाशैली और भावव्यंजन सभी अनूठे संपन्न हुए हैं। सामान्य समाज की अंत प्रकृति का जो व्यापक विश्लेषण और वस्तुतत्त्व का जो अप्रतिहत विकास इनकी रचनाओं में मिलता है वह अन्य किसी भी हिंदीलेखक की कृति में नहीं दीख पड़ता। इस कारण इन्हें उपन्यासक्षेत्र का सम्राट् कहा जाता है।

साहित्यकला की दृष्टि से भव्य होने के साथ साथ प्रेमचंद की कृतियों ने समाज का अमित उपकार भी किया है। उन्होंने प्लेटफार्म से राष्ट्र की सेवा नहीं की, किंतु उनकी कर्णकलित लेखनी ने दीन दुखियों की मर्मभरी भूक वेदना को मुखरित कर उन्नत समाज का ध्यान उनकी ओर अवश्य बंधाया है।

इनकी भाषा चखती हिंदुस्तानी है। उसमें उर्दू के शब्दों का अच्छा समावेश है।

हिंदी को आपसे बड़ी आशा थी किंतु दुर्भाग्यवश सन् १९३६ में जलोदर रोग से पीडित हो आप इस नश्वर संसार से चले बसे।

उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्टे वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़ों की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तंग चक्करदार गलियों में, हर एक लड्डी वाले के लिये ठहरकर सत्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसाजी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा',—कहते हुए सफेद

फेंटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेतें हैं। क्या मनाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चित्तौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीऊराजोगिए; हट जा, करमाँवालिए, हट जा, पुत्ताँप्यारिए, बच जा, लम्मी उमराँवालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्य वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बंबू-कार्टे वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि, दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिये बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं ?'

'मगरे में;—और तेरे ?'

'भामे—मे;—यहाँ कहाँ रहती है।'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

‘मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाज़ार में है।’

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुसकराकर पूछा—‘तेरी कुड़माई हो गई?’ इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर ‘धत्’ कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहाँ, या दूध वाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—‘तेरी कुड़माई हो गई?’ और उत्तर में वही ‘धत्’ मिला।

एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिये पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली—‘हाँ, हो गई।’

‘कब?’

‘कल,—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।’ लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती

हुई किसी बैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

२

‘राम-राम यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दम-गुना जाड़ा, और मेह और बरफ़ ऊपर से। पिडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिग्बाना नहीं—घंटे दो घंटे में कान के परदे फूटने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और मो-मो गज धरती उछल पड़ती है। इस गौबी गोली से बचे तो कोई लड़े। नगर-कोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बड़ेमान मिट्टी में लेते हुए या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।’

‘लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिये। परसों ‘रिलीफ़’ आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों ‘भटका’ करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग़ में—मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।’

‘चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढाकर मार्च

का हुक्म मिल जाय । फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो । पाजी कही के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं । यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेकते हैं । उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था । पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—'

‘नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते । क्यों ?’ सूबेदार हजारासिंह ने मुसकराकर कहा, ‘लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते । बड़े अफ़सर दूर की सोचते हैं । तीन सौ मील का सामना है । एक तरफ बढ गए तो क्या होगा ?’

‘सूबेदार जी, सच है’ लहनासिंह बोला, ‘पर करें क्या ? हड्डियों-हड्डियों में जो जाड़ा धँस गया है । सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ़ से चंबे की बावलियों के-से सोते भर रहे हैं । एक धावा हो जाय तो गर्मी आ जाय ।’

‘उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल । बजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेको । महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे ।’ यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे ।

बजीरासिंह पलटन का विदूपक था । बाल्टी में गँदला पानी खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—‘मैं पाधा

बन गया हूँ । करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण !' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये ।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो । ऐमा स्वाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा ।'

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है । मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाव ज़मीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा ।'

'लाडी होरो को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—'

'चुप कर । यहाँ वालों को शरम नहीं ।'

'देस-देस की चाल है । आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तंबाखू नहीं पीते । वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिये लड़ेगा नहीं ।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है ?'

'अच्छा है ।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ । रात भर तुम अपने दोनों कंबल उसे ओढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते

हो । उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो । अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो । कहीं तुम न माँदे पड़ जाना । जाड़ा क्या है मौत है, और 'निमोनिया' से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते ।'

'मेरा डर मत करो । मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा । भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी ।'

वजीरासिंह ने त्योंरी चढाकर कहा—'क्या मरने-मराने की बात लगाई है ?

इतने में एक कोने से पंजाबी गीत की आवाज सुनाई दी । सारी खंदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों ।

३

दो पहर रात गई है । अँधेरा है । सन्नाटा छाया हुआ है । बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन दिनों पर अपने दोनों कंबल बिछाकर और लहनासिंह के दो कंबल और एक वरानकोट ओढ़कर सो रहा है । लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है । एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर । बोधासिंह कराहा ।

‘क्यों बोधा भाई, क्या है ?’

‘पानी पिला दो ।’

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पृष्ठा—‘कहो कैसे हो ?’ पानी पीकर बोधासिंह बोला—‘कँपनी छूट गयी है । रोम-रोम मे तार दौड़ रहे हैं । दाँत बज रहे हैं ।’

‘अच्छा, मेरी जरमी पहन लो ।’

‘और तुम ?’

‘मेरे पास सिगाड़ी है और मुझे गरमी लगती है, पसीना आ रहा है ।’

‘ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम, मेरे लिये—’

‘हाँ, याद आई । मेरे पास दूसरी गरम जरसी है । आज सबेरे ही आई है । विलायत से मेमे बुन बुनकर भेज रही है । गुरु उनका भला करे ।’ यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा ।

‘सच कहते हो ?’

‘और नहीं भूठ ?’ यों कहकर नहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और ज़ीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ । मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी ।

आधा घंटा बीता । इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—‘सूबेदार हजारासिंह !’

‘कौन ? लपटन साहब ? हुक्म हुजूर’ कहकर सूबेदार तनकर फौजी, सलाम करके सामने हुआ ।

‘देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पंद्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीनकर वही, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।’

‘जो हुक्म।’

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कंबल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगडी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गये और जब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

‘लो तुम भी पियो।’

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला—‘लाओ, साहब।’ हाथ आगे करते

ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल दंगे । तब उसका माथा ठनका । लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हे बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा । लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे ।

‘क्यों साहब, हम लोग हिंदुस्तान कब जायेंगे ?’

‘लड़ाई खत्म होने पर । क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं ?’

‘नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—‘हाँ, हाँ’—वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अबदुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढाने को रह गया था ? ‘बेशक, पाजी कहीं का’—सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी । और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्टे में निकली । ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मजा है । क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगायेंगे । ‘हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया’—ऐसे बड़े-बड़े सौंग ! दो-दो फुट के तो होंगे !’

‘हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे । तुमने सिगरेट नहीं पिया ?’

‘पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ’—कहकर लहनासिंह खंदक में घुसा । अब उसे संदेह नहीं रहा था । उसने भटपट निश्चय कर लिया था कि क्या करना चाहिए ।

अँधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया ।

‘कौन ? वजीरासिंह ?’

‘हाँ, क्यों लहना ? क्या, कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती ?’

४

‘होश में आओ । कयामत आई और लपटन साहब की बर्दी पहनकर आई है ।’

‘क्यों ?’

‘लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं । उनकी बर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है । सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा । मैंने देखा है और बातें की हैं । सौहरा साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू । और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ।’

‘तो अब ?’

‘अब मारे गये । धोखा है । सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा । उधर उन पर

खुले मे धावा होगा । उठो, एक काम करो । पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ । अभी बहुत दूर न गये होंगे । सूबेदार से कहो कि एक दम लौट आवे । खंदक की बात झूठ है । चले जाओ, खंदक के पीछे से निकल जाओ । पत्ता तक न खड़के । देर मत करो ।’

‘हुकुम तो यह है कि यही—’

‘ऐसी-तैसी हुकुम की । मेरा हुकुम— जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफसर है उसका हुकुम है । मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ ।’

‘पर यहाँ तो तुम आठ ही हो ।’

‘आठ नहीं, दस लाख । एक एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है । चले जाओ ।’

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया । उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर के तीन गोले निकाले । तीनों को जगह-जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया । तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रक्खा । बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बंदूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा । धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी । लहनासिंह

यही मेरी मातृ-भूमि है

आज पूरे ६० वर्ष के बाद मुझे मातृभूमि, प्यारी मातृभूमि, के दर्शन प्राप्त हुए हैं। जिस समय मैं अपने प्यारे देश से विदा हुआ था और भाग्य मुझे पश्चिम की ओर ले चला था, उस समय मैं पूर्ण युवा था। मेरी नसों में नवीन रक्त संचालित हो रहा था। हृदय उमंगों और बड़ी-बड़ी आशाओं से भरा हुआ था। मुझे अपने प्यारे भारतवर्ष से किसी अत्याचारी के अत्याचार या न्याय के बलवान् हाथों ने नहीं जुदा किया था। अत्याचारी के अत्याचार और कानून की कठोरताएँ मुझ से जो चाहे, करा सकती हैं, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नहीं छुड़ा सकती। वे मेरी उच्च अभिलाषाएँ और बड़े-बड़े ऊँचे विचार ही थे, जिन्होंने मुझे देश-निकाला दिया था।

मैंने अमेरिका जाकर वहाँ खूब व्यापार किया और व्यापार से धन भी खूब पैदा किया तथा धन से आनन्द भी खूब मनमाने लूटे। सौभाग्य से पत्नी भी ऐसी मिली, जो सौंदर्य में अपना सानी

आप ही थी। उसकी लम्बवयता और सुन्दरता की ख्याति तमाम अमेरिका में फैली थी। उसके हृदय में ऐसे विचार की गुंजायश भी न थी, जिसका संबंध मुझसे न हो। मैं उस पर तन-मन से आसक्त था और वह मेरी सर्वस्व थी। मेरे पाँच पुत्र थे जो मुंदर, हृष्ट-पुष्ट और ईमानदार थे। उन्होंने व्यापार को और भी चमका दिया था। मेरे भोले-भाले नन्हे-नन्हे पौत्र गोद में बैठे हुए थे, जब कि मैंने प्यारी मातृभूमि के अंतिम दर्शन करने को अपने पैर उठाए। मैंने अनंत धन, प्रियतमा पत्नी, सपूत बेटे और प्यारे-प्यारे जिगर के टुकड़े नन्हे-नन्हे बच्चे आदि अमूल्य पदार्थ केवल इसी लिए परित्याग कर दिए कि प्यारी भारत-जननी के अंतिम दर्शन कर लूँ। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ, १० वर्ष के बाद पूरे सौ वर्ष का हो जाऊँगा। अब मेरे हृदय में केवल एक ही अभिलाषा बाकी है। कि मैं अपनी मातृभूमि का रज-कण बनूँ।

यह अभिलाषा कुछ आज ही मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उस समय भी थी जब मेरी प्यारी पत्नी अपनी मधुर बातों और कोमल कटाकों से मेरे हृदय को प्रफुल्लित किया करती थी और जब कि मेरे युवा पुत्र प्रातःकाल आकर अपने वृद्ध पिता को सभक्ति प्रणाम करते, उस समय भी मेरे हृदय में एक काँटा-सा खटकता रहता था कि मैं अपनी मातृभूमि से अलग हूँ। यह देश मेरा देश नहीं है और मैं इस देश का नहीं हूँ।

मेरे धन था, पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी, मगर न मालूम क्यों, मुझे रह-रहकर मातृभूमि के दूटे-फूटे भोपड़े, चार-छः बीघे मौरूसी ज़मीन और बालपन के लँगोटिए यारों की याद

अक्सर सता जाया करती । प्रायः अपार, प्रसन्नता और आनंदोत्सवों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था कि 'यदि मैं अपने देश में होता.....!'

२

जिस समय मैं बंबई में जहाज से उतरा, मैंने पहले काले-काले कोट-पतलून पहने टूटी-फूटी अंगरेजी बोलते हुए मल्लाह देखे । फिर अंगरेजी दूकाने, ट्राम और मोटरगाड़ियाँ दीख पड़ीं । इसके बाद रबर-टायरवाली गाड़ियों और मुँह में चुरट दाबे हुए आदमियों से मुठभेड़ हुई । फिर रेल का विक्टोरिया-टर्मिनस-स्टेशन देखा । बाद मैं रेल पर सवार होकर हरी-हरी पहाड़ियों के मध्य में स्थित अपने गाँव को चल दिया । उस समय मेरी आँखों में आँसू भर आए और मैं खूब रोया, क्योंकि यह मेरा देश न था । यह वह देश न था, जिसके दर्शनों की इच्छा सदा मेरे हृदय में लहराया करती थी । यह तो कोई और देश था । यह अमेरिका या इंग्लैंड था, मगर प्यारा भारत नहीं ।

रेलगाड़ी जंगलों, पहाड़ों, नदियों और मैदानों को पार करती हुई मेरे प्यारे गाँव के निकट पहुँची, जो किसी समय में फूल, पत्तों और फलों की बहुतायत तथा नदी-नालों की अधिकता से स्वर्ग को मात कर रहा था । मैं जब गाड़ी से उतरा, तो मेरा हृदय बाँसों उछल रहा था । अब अपना प्यारा घर देखूँगा—अपने बालपन के प्यारे साथियों से मिलूँगा । मैं इस समय बिलकुल भूल गया था कि मैं ६० वर्ष का बूढ़ा हूँ । ज्यों-ज्यों मैं गाँव के निकट आता था, मेरे

पग तेज़ होते जाते थे और हृदय में अकथनीय आनन्द का स्रोत उमड़ रहा था। प्रत्येक वस्तु पर आँखें फाड़-फाड़ कर दृष्टि डालता। अहा! यह वही नाला है, जिसमें हम रोज़ घोड़े नहलाते थे और स्वयं भी डुबकियाँ लगाते थे। किंतु अब उसके दोनों ओर काँटेदार तार लगे हुए थे और सामने एक बँगला था, जिसमें दो अँगरेज बंदूकें लिए इधर-उधर ताक रहे थे। नाले में नहाने की सक्त्त मनाही थी।

गाँव में गया, और निगाहे बालपन के साथियों को खोजने लगीं; किंतु शोक! वे सब-के-सब मृत्यु के प्रास हो चुके थे। मेरा घर -- मेरा टूटा-फूटा भोपडा—जिसकी गोद में मैं बरसों ग्वेला था, जहाँ बचपन और बेफिक्री के आनंद लूटे थे और जिनका चित्र अभी तक मेरी आँखों में फिर रहा था, वही मेरा प्यारा घर अब मिट्टी का ढेर हो गया था।

(३)

वह स्थान गौर-आबाद न था। सैकड़ों आदमी चलते-फिरते नज़र आते थे, जो अदालत-कचहरी और थाना-पुलिस की बातें कर रहे थे। उनके मुखों से चिंता, निर्जीवता और उदासी प्रदर्शित होती थी। सब सांसारिक चिंताओं से व्यथित मालूम होते थे। मेरे साथियों के समान हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, लाल चेहरेवाले नवयुवक कहीं न देख पड़ते थे। उस अखाड़े के स्थान पर, जिसकी जड़ मेरे हाथों ने डाली थी, अब एक टूटा-फूटा स्कूल था। उसमें दुर्बल, कांतिहीन, रोगियों की-सी सूरतवाले बालक, फटे कपड़े पहने, बैठे

ऊँच रहे थे। उनको देखकर सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा—
‘नहीं-नहीं, यह मेरा प्यारा देश नहीं है। यह देश देखने में इतनी
दूर से नहीं आया हूँ—यह मेरा प्यारा भारतवर्ष नहीं है।’

बरगद के पेड़ की ओर दौड़ा, जिसकी सुहावनी छाया में मैंने
बचपन के आतंज उड़ाए थे, जो हमारे छुटपन का क्रीडास्थल
और युवावस्था का सुखप्रद कुंज था। आह ! इस प्यारे बरगद को
देखते ही हृदय पर एक बड़ा आघात पहुँचा और दिल में महान्
शोक उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ऐसी-ऐसी दुःखदायक तथा हृदय-
विदारक स्मृतियाँ ताजी हो गईं कि घंटों पृथ्वी पर बैठे-बैठे मैं आँसू
बहाता रहा। हा ! यही बरगद है, जिसकी डालों पर चढ़कर मैं
फुनगियों तक पहुँचता था, जिसकी जटाएँ हमारी भूला थीं और
जिसके फल हमें सारे संसार की मिठाइयों से अधिक स्वादिष्ठ मालूम
होते थे। मेरे गले में बाँधे डालकर खेलनेवाले लँगोटिए यार, जो
कभी रूठते थे, कभी मनाते थे, कहाँ गए ? हाय, मैं बिना घर-बार
का मुसाफिर, अब क्या अकेला ही हूँ ? क्या मेरा कोई भी साथी
नहीं ? इस बरगद के निकट अब थाना था और बरगद के नीचे
कोई लाल साफ़ा बाँधे बैठा था। उसके आसपास दस-बीस लाल
पगडीवाले आदमी करबद्ध खड़े थे। वहाँ फटे-पुराने कपड़े पहने
एक दुर्भिक्षप्रस्त पुरुष, जिस पर अभी चाबुकों की बौछार हुई थी,
पड़ा सिसक रहा था। मुझे ध्यान आया कि यह मेरा प्यारा देश
नहीं है, यह कोई और देश है। यह योरप है, अमेरिका है, मगर
मेरी प्यारी मातृभूमि नहीं है—कदापि नहीं।

इधर से निराश होकर मैं उस चौपाल की ओर चला, जहाँ

शाम के वक्त पिताजी गाँव के अन्य बुजुर्गों के साथ हुक्का पीते और हँसी-ब्रह्मकहे उड़ाते थे। हम भी उम टाट के बिछौने पर कला-बाजियाँ खाया करते थे। कभी-कभी वहाँ पंचायत भी बैठती थी, जिसके सरपंच सदा पिताजी ही हुआ करते थे। इसी चौपाल के पास एक गोशाला थी, जहाँ गाँव-भर की गाँव रक्खी जाती थी और बछड़ों के साथ हम यहीं कलोलें किया करते थे। शोक ! अब उस चौपाल का पता तक न था ! वहाँ अब गाँवों में टीका लगाने की चौकी और डाकखाना था।

उस समय इसी चौपाल से लगा एक कोल्हवाडा था, जहाँ जाड़े के दिनों में ईख पेरी जाती थी और गुड की सुगंध से चित्त प्रसन्न हो जाता था। हम और हमारे साथी गँडेरियों के लिए वहाँ बैठे रहते और गँडेरियाँ कतरनेवाले मजदूरों के हस्त-लाघव को देखकर आश्चर्य किया करते थे। वहाँ हजारों बार मैंने कच्चा रस और पक्का दूध मिलाकर पिया था। आसपास के घरों की स्त्रियाँ और बालक अपने-अपने घड़े लेकर वहाँ आते थे और उनमें रस भरकर ले जाते थे। शोक है कि वे कोल्हू अब तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे, किंतु कोल्हवाड़े की जगह पर अब एक सन लपेटनेवाली मशीन लगी थी और उसके सामने एक तंबोली और सिगरेटवाले की दूकान थी। इन हृदय-विदारक दृश्यों को देखकर मैंने एक आदमी से, जो देखने में सभ्य मालूम होता था, पूछा—‘महाशय, मैं एक परदेशी यात्री हूँ, रात-भर लेट रहने की मुझे आज्ञा दीजिएगा ?’ इस आदमी ने मुझे सिर से पैर तक गहरी दृष्टि से देखा और बोला—‘आगे जाओ, यहाँ जगह नहीं है।’ मैं आगे गया

और वहाँ भी यही उत्तर मिला। पाँचवीं बार एक सज्जन से स्थान माँगने पर उन्होंने एक मुट्टी चने मेरे हाथ पर रख दिए। चने मेरे हाथ से छूट पड़े और नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी। मुख से सहसा निकल पड़ा—‘हाय, यह मेरा देश नहीं है; यह कोई और देश है। यह हमारा अतिथि-सत्कारी प्यारा भारत नहीं है—कदापि नहीं है।’

मैंने एक सिगरेट की डिब्बिया खरीदी और एक सुनसान जगह पर बैठकर सिगरेट पीते हुए पूर्व समय की याद करने लगा। अचानक मुझे धर्मशाला का स्मरण हो आया, जो मेरे विदेश जाते समय बन रही थी। मैं उस ओर लपका कि रात किसी प्रकार वही काट लूँ, मगर शोक ! शोक !! महान् शोक !!! धर्मशाला ज्यों-की-त्यों खड़ी थी, किंतु उसमें गरीब यात्रियों के टिकने के लिए स्थान न था। मदिरा, दुराचार और जुए ने उसे अपना घर बना रक्खा था। यह दशा देखकर विवशतः मेरे हृदय से एक सर्द आह निकल पड़ी और मैं जोर से चिल्ला उठा—‘नहीं, नहीं, नहीं, और हजार बार नहीं है—यह मेरा प्यारा भारत नहीं है। यह कोई और देश है। यह योरप है, अमेरिका है, मगर भारत कदापि नहीं है।’

४

अधेरी रात थी। गीढ़ और कुत्ते अपने कर्कश स्वर में गीत गा रहे थे। मैं अपना दुःखित हृदय लेकर उसी नाले के किनारे जाकर बैठ गया और सोचने लगा—अब क्या करूँ ? क्या फिर अपने पुत्रों के पास लौट जाऊँ और अपना यह शरीर अमेरिका की

मेट्टी में मिलाऊँ ? अब तक मेरी मातृभूमि थी; मैं विदेश में जरूर था, किंतु मुझे अपने प्यारे देश की याद बनी थी, पर अब मैं देश-विहीन हूँ। मेरा कोई देश नहीं है। इसी सोच-विचार में मैं बहुत देर तक घुटनों पर सिर रक्खे मौन बैठा रहा। रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत की। सहसा घंटे वाले ने तीन बजाए और किस्मी के गाने का शब्द कानों में आया। हृदय गद्गद हो गया ! यह तो देश का ही राग है, यह तो मातृभूमि का ही स्वर है ! मैं तुरंत उठ खड़ा हुआ और क्या देखा हूँ कि १५-२० वृद्धा स्त्रियाँ, सफेद धोतियाँ पहने, हाथों में लोटे लिए स्नान को जा रही हैं और गाती जाती हैं—

“हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो—”

मैं इस गीत को सुनकर तन्मय हो ही रहा था कि इनने मैं मुझे बहुत आदमियों का बोलचाल सुन पड़ा। उनमें से कुछ लोग हाथों में पीतल के कमंडलु लिए हुए शिव-शिव, हर-हर, गंगे-गंगे, नारायण-नारायण आदि शब्द बोलते हुए चले जाते थे। मधुर, भावमय और प्रभावोत्पादक राग से मेरे हृदय पर जो प्रभाव हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है।

मैंने अमेरिका की रमणियों का आलाप सुना था, सहस्रों बार उनकी जिह्वा से प्रेम और प्यार के शब्द सुने थे, उनके हृदयार्कषक वचनों का आनंद उठाया था, मैंने सुरीले पक्षियों का चहचहाना भी सुना था, किंतु जो आनंद, जो मजा और जो सुख मुझे इस राग में आया वह मुझे जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने स्वयं गुन-गुनाकर गाया—

“हमारे प्रभु अवगुन चित न श्रो—”

मेरे हृदय मे फिर उत्साह आया कि ये तो मेरे प्यारे देश की ही बाते हैं। आनंदातिरेक से मेरा हृदय आनंदमय हो गया। मैं भी इन आदमियों के साथ हो लिया और ६ मील तक पहाड़ी मार्ग पार करके उसी नदी के किनारे पहुँचा, जिसका नाम पतितपावनी है, जिसकी लहरों मे डुबकी लगाना और जिसकी गोद मे सरना प्रत्येक हिद् अपना परम सौभाग्य समझता है। पतित-पावनी भागीरथी गंगा मेरे प्यारे गाँव से छ'-सात मील पर बहती थी। किसी समय मै घोड़े पर चढ़कर नित्य स्नान करने जाता था। गंगा माता के दर्शनों की लालसा मेरे हृदय मे सदा रहती थी। यहाँ मैने हजारों मनुष्यों को इस ठंडे पानी मे डुबकी लगाते हुए देखा। कुछ लोग बालू पर बैठे गायत्री-मंत्र जप रहे थे। कुछ लोग हवन करने में संलग्न थे। कुछ माथे पर तिलक लगा रहे थे और कुछ लोग सस्वर वेद-मंत्र पढ रहे थे। मेरा हृदय फिर उत्साहित हुआ और मै ज़ोर से कह उठा—“हाँ, हाँ, यही मेरा प्यारा देश है, यही मेरी पवित्र मातृभूमि है, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ भारत है और इसी के दर्शनों की मेरी उत्कट इच्छा थी। इसी की पवित्र धूलि के कण बनने की मेरी प्रबल अभिलाषा है।”

५

मैं विशेष आनंद में मग्न था। मैने अपना पुराना कोट और पतलून उतारकर फेंक दिया और गंगा माता की गोद मे जा गिरा, जैसे कोई भोला-भाला बालक दिन-भर निर्दय लोगों के साथ रहने

के बाद संध्या को अपनी प्यारी माता की गोद में दौड़कर चला आवे और उसकी छाती से चिपट जाय । हाँ, अब मैं अपने देश में हूँ । यह मेरी प्यारी मातृभूमि है । ये लोग मेरे भाई हैं और गंगा मेरी माता है ।

मैंने ठीक गंगा के किनारे एक छोटी-सी कुटी बनवा ली है । अब मुझे सिवा राम-नाम जपने के और कोई काम नहीं है । मैं नित्य प्रातः-सायं गंगास्नान करता हूँ और मेरी प्रबल इच्छा है कि इसी स्थान पर मेरे प्राण निकले और मेरी अस्थियाँ गंगा माता की लहरों की भेट हों ।

मेरी स्त्री और मेरे पुत्र बार-बार बुलाते हैं, मगर अब मैं यह गंगा माता का तट और अपना प्यारा देश छोड़कर वहाँ नहीं जा सकता । मैं अपनी मिट्टी गंगा जी को ही सौंपूँगा । अब संसार की कोई आकांक्षा मुझे इस स्थान से नहीं हटा सकती, क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृभूमि है । बस, मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राण विसर्जन करूँ ।

दिल की रानी

जिन वीर तुर्कों के प्रखर प्रताप से ईसाई-जगत् कॉप रहा था, उन्हीं का रक्त आज कुस्तुन्तुनिया की गलियों में बह रहा है। वही कुस्तुन्तुनिया, जो सौ साल पहले तुर्कों के आतंक से आहत हो रहा था, आज उनके गर्म रक्त से अपना कलेजा ठण्डा कर रहा है। सत्तर हजार तुर्क योद्धाओं की लाशें बासफ़रस की लहरों पर तैर रही हैं और तुर्की सेनापति एक लाख सैनिकों के साथ तैमूरी तेज के सामने अपने भाग्य का निर्णय सुनने के लिए खड़ा है।

तैमूर ने विजय से भरी आँखें उठाई और सेनापति यज़दानी की ओर देखकर सिंह के समान गरजा—‘क्या चाहते हो, जीवन या मृत्यु ?’

यज़दानी ने गर्व से सिर उठाकर कहा—‘स-सम्मान जीवन मिले तो जीवन, नहीं तो मृत्यु ।’

तैमूर का क्रोध प्रचंड हो उठा। उसने बड़े-बड़े अभिमानियों का सिर नीचा कर दिया था। यह जवाब इग अवमग पर मुनने की उसमे सामर्थ्य न थी। इन एक लाख सैनिकों की जान उसकी मुट्टी मे है। उन्हे वह एक क्षण में ममल मकता है। उस पर भी इतना अभिमान। स-सम्मान जीवन। इसका यही तो अर्थ है कि गरीबों का जीवन अमीरों के भोग-विलास पर बलिदान किया जाय, वही शराव की मजलिये जमे, नही, तैमूर ने ग्वलीफ्रा बायजीद का घमंड इसलिए नही तोडा है कि तुकों को फिर उसी मद्रान्ध स्वाधीनता मे इसलाम का नाम डुबाने को छोड़ दे। तब उसे इनना रक्त बहाने की क्या ज़रूरत थी? मानव-रक्त का प्रवाह, संगीत का प्रवाह नही, रस का प्रवाह नही वह एक बीभत्स दृश्य है, जिसे देख कर आँखे मुँह फेर लेती हैं, हृदय सिर झुका लेता है। तैमूर कोई हिंसक पशु नही है, जो यह दृश्य देखने के लिए अपने जीवन की बाज़ी लगा दे।

वह अपने शब्दों मे धिक्कार भरकर बोला—“जिसे तुम स-सम्मान जीवन कहते हो, वह पाप और नरक का जीवन है।”

यज्ञदानी को तैमूर से दया या क्षमा की आशा न थी। उसकी या उसके योद्धाओं की जान किसी तरह नहीं बच सकती। फिर वह क्यों दबे और क्यों न जान पर खेल कर तैमूर के प्रति उसके मन में जो घृणा है, उसे प्रकट कर दे। उसने एक बार कानर नेत्रों से उस रूपवान युवक की ओर देखा, जो उसके पीछे खड़ा, जैसे अपनी जवानी की लगाम खींच रहा था। सान पर चढ़े हुए,

इसपात के समान उसके अंग-अंग से अतुल क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। यजदानी ने उसकी सूरत देखी, शांति से अपनी खींची हुई तलवार म्यान में कर ली, और रक्त के घूँट पीकर बोला—‘जहाँपनाह इस वक्त विजयी हैं, लेकिन अपराध क्षमा हो तो कह दूँ कि अपने जीवन के विषय में तुकों को तातारियों से उपदेश लेने की आवश्यकता नहीं। संसार से अलग, तातार के ऊसर मैदानों में, त्याग और व्रत की उपासना की जा सकती है, और न प्राप्त होनेवाले पदार्थों का बहिष्कार किया जा सकता है, पर जहाँ खुदा ने ‘नेमतों की वर्षा की हो, वहाँ उन नेमतों का भोग न करना कृतघ्नता है। अगर तलवार ही सभ्यता का प्रमाण-पत्र होती, तो गाल जाति रोमनों से कहीं अधिक सभ्य होती।’

तैमूर जोर से हँसा और उसके सैनिकों ने तलवारों पर हाथ रख लिए। तैमूर का ठहाका मृत्यु का ठहाका था, या गिरने वाले वज्र का तडाका।

‘तातार वाले पशु है, क्यों?’

‘मैं यह नहीं कहता।’

‘तुम कहते हो, खुदा ने तुम्हें भोग-विलास के लिए पैदा किया है। मैं कहता हूँ यह कुफ्र है। खुदा ने मनुष्य को भक्ति के लिए

१ उत्तमोत्तम पदार्थ

२ जो बात इस्लाम के भिद्धान्तों के अनुकूल न हो, मुस्लिम उसे कुफ्र—अधर्म कहते हैं।

पैदा किया है और इसके विरुद्ध जो कोई कुछ करता है वह काफ़िर^१ है, नागकी है। रसूले-पाक^२ हमारे जीवन को पवित्र करने के लिए, हमें मन्वा मनुष्य बनाने के लिए, आए थे, हमें अधर्म की शिक्षा देने नहीं। तैमूर जगत् को इस कुफ़्र से पवित्र कर देने का बीड़ा उठा चुका है। रसूले-पाक के चरणों की शपथ, मैं निर्दय नहीं हूँ, अत्याचारी नहीं हूँ, हिंसक नहीं हूँ, कितु कुफ़्र का दण्ड मेरे धर्म में मृत्यु के सिवा कुछ नहीं है।'

उसने तातारी सैनिक की तरफ़ घातक दृष्टि से देखा और तत्क्षण एक देव-सा आदमी तलवार मौत कर यज़दानी के सिर पर आ पहुँचा। तातारी सेना भी तलवारे खीच-खींच कर तुर्की सेना पर टूट पड़ी, और दम-के-दम में कितनी ही लाशें पृथ्वी पर फड़कने लगी।

२

सहसा वही रूपवान युवक, जो यज़दानी के पीछे खड़ा था, आगे बढ़कर तैमूर के सामने आया और जैसे मौत को अपनी दोनों बँधी हुई मुट्टियों में मसलता हुआ बोला—'ऐ अपने को मुसलमान कहने वाले बादशाह ! क्या यही वह इसलाम है, जिसके प्रचार का तूने बीड़ा उठाया है ? इसलाम की यही शिक्षा है कि तू उन बहादुरों

१ जो इसलाम धर्म का अवलम्बी न हो, उसे मुस्लिम काफ़िर कहते हैं।

२ ईश्वर के प्रतिनिधि को इसलाम में रसूले-पाक कहते हैं।

का इस निर्दयता से रक्त बहाए, जिन्होंने इसके सिवा कोई पाप नहीं किया कि उन्होंने अपने खलीफ़ा और अपने देश की जी-जान से सहायता की ।’

चारों ओर सन्नाटा छा गया । एक युवक, जिसकी अभी मसे भी न भीगी थीं, तैमूर जैसे तेजस्वी बादशाह का इतने खुले शब्दों में तिरस्कार करे और उसकी जिह्वा तालू से न खिचवा ली जाय ! सभी स्तम्भित हो रहे थे और तैमूर सम्मोहित-सा बैठा उस युवक की ओर ताक रहा था ।

युवक ने तातारी सैनिकों की ओर, जिनके चेहरों पर कुतूहलमय प्रोत्साहन भलक रहा था, देखा और बोला—‘तू इन मुसलमानों को काफ़िर कहता है और समझता है कि तू इन्हें जीवन्मुक्त करके खुदा और इसलाम की सेवा कर रहा है । मैं तुम्हसे पूछता हूँ, अगर वह लोग जो खुदा के सिवा और किसी के सामने सिजदा नहीं करते, जो रसूले-पाक को अपना नेता समझते हैं, मुसलमान नहीं है, तो कौन मुसलमान है ? मैं कहता हूँ हम काफ़िर सही; लेकिन तेरे क़ैदी तो है ? क्या इसलाम जंजीर में बँधे हुए क़ैदियों के वध की आज्ञा देता है ? खुदा ने अगर तुम्हें शक्ति दी है, अधिकार दिया है, तो क्या इसी लिए कि तू प्राणियों का रक्त बहाए ? क्या पापियों का वध करके तू उन्हें सीधे रास्ते पर ले जायगा ? तूने कितनी निर्दयता से सत्तर हजार बहादुर तुर्कों को

धोखा देकर सुरंग से उडवा दिया, और उनके अनजान बच्चों और निरपराध स्त्रियों को अनाथ कर दिया, तुझे कुछ अनुमान है ? क्या यही कारनामे है, जिन पर तू अपने मुसलमान होने का गर्व करता है ? क्या इसी वध, रक्त और अन्याय की सियाही से तू संसार में अपना नाम उज्ज्वल करेगा ? तूने तुर्कों के रक्त के बहंत दरिया में अपने घोड़ों के सुम नहीं भिगोए है, बल्कि इमलाम को जड़ से खोद कर फेंक दिया है । यह वीर तुर्कों का ही आत्मोत्सर्ग है, जिसने यूरोप में इसलाम की 'तोहीद' फैलाई । आज सोफ्रिया के गिरजे में तुझे अल्लाह-अकबर की 'सदा सुनाई' दे रही है, सारा यूरोप इसलाम का स्वागत करने को तैयार है । क्या ये कारनामे इसी योग्य हैं कि उनका यह इनाम मिले ? इस विचार को मन से निकाल दे कि तू हिंसा से इसलाम की सेवा कर रहा है । एक दिन तुझे भी 'परवरदिगार' के सामने अपने कर्मों का उत्तर देना पड़ेगा और तेरी कोई हीलहुज्जत न सुनी जायगी, क्योंकि यदि तुझ में अब भी भले और बुरे का विवेक बाक़ी है, तो अपने दिल से पूछ ! तू ने यह धर्मयुद्ध खुदा की राह में किया या अपनी लालसा के लिए; और मैं जानता हूँ तुझे जो जवाब मिलेगा, वह तेरी गर्दन को लज्जा से झुका देगा ।'

खलीफ़ा अभी सिर झुकाए हुए ही था कि यज़दानी ने काँपते हुए शब्दों में विनती की—'जहाँपनाह, यह दास का लडका है । इसके दिमाग में कुछ गड-बड है । हुज़ूर इसकी अबज़ाओं को क्षमा करें । मैं उसका दंड भेलने को तैयार हूँ ।

तैमूर उस युवक के मुख की ओर स्थिर नेत्रों से देख रहा था। आज जीवन में पहली बार उसे ऐसे निर्भीक शब्दों के सुनने का अवसर मिला। उसके सामने बड़े-बड़े सेनापतियों, मन्त्रियों और बादशाहों की जिह्वा न खुलती थी। वह जो कुछ करता या कहता था, वही कानून था, किसी को उसमें चूँ करने की शक्ति न थी। उनकी मिथ्या प्रशंसाओं ने उसकी अहंमन्यता को आकाश पर चढ़ा दिया था। उसे विश्वास हो गया था कि खुदा ने उसे इसलाम को अगाने और सुधारने के लिए ही दुनिया में भेजा है। उसने पैगम्बरी का दावा तो नहीं किया था, पर उसके मन में यह भावना दृढ़ हो गई थी, इसलिए जब आज एक युवक ने प्राणों का मोह छोड़ कर उसकी कीर्ति का परदा खोल दिया तो उसकी चेतना जैसे जाग उठी। उसके मन में क्रोध और हिंसा की जगह अद्भुत का उदय हुआ। उसकी आँखों का एक संकेत इस युवक के जीवन का दीपक बुझा सकता था। उसकी विश्व-विजयिनी शक्ति के सामने यह दुधमुँहा बालक मानों अपने नन्हे-नन्हे हाथों से समुद्र के प्रवाह को रोकने के लिए खड़ा हो। कितना हास्यास्पद साहस था; पर उसके साथ ही कितना आत्मविश्वास से भरा हुआ। तैमूर को ऐसा जान पड़ा कि इस निहत्थे बालक के सामने वह कितना निर्बल है। मनुष्य में ऐसे साहस का एक ही स्रोत हो सकता है और वह है—सत्य पर अटल विश्वास। उसकी आत्मा दौड़ कर उस युवक के आचल में चिमट जाने के लिए अधीर हो गई। वह दार्शनिक न था, जो सत्य में भी शंका करता है। वह सरल सैनिक था, जो असत्य को भी अपने विश्वास से सत्य बना देता है।

यज्ञदानी ने उसी स्वर में कहा—जहाँपनाह, इसके कठोर भाषण पर ध्यान न देवे × × × ।

तैमूर ने तुरंत सिंहासन से उठकर यज्ञदानी को गले लगा लिया और बोला—काश, ऐसी अवज्ञाओं और कठोर भाषणों के सुनने का पहले अक्सर मिला होता, तो आज इतने निरपराधों का रक्त मेरी गर्दन पर न होता। मुझे इस युवा में किमी देवता की आत्मा का प्रकाश नजर आता है, जो मुझ-जैसे मार्ग-भ्रष्टों को सच्चा मार्ग दिखाने के लिये भेंजी गई है। मेरे मित्र! तुम महापुरुषवान हो कि ऐसे देव-स्वभाव बेटे के बाप हो। क्या मैं उसका नाम पूछ सकता हूँ ?

यज्ञदानी पहले अग्निपूजक था, पीछे मुसलमान हो गया था, पर अभी तक कभी-कभी उसके मन में शंकाएँ उठती रहती थीं कि उसने क्यों इसलाम अंगीकार किया। जो क़ैदी फॉसी के तख्ते पर खड़ा सूखा जा रहा था कि एक क्षण में रस्सी उसकी गर्दन में पड़ेगी और वह लटकता रह जायगा, उसे जैसे किसी देवता ने गोद में ले लिया। वह गद्गद कण्ठ से बोला—उसे हबीब कहते हैं।

तैमूर ने युवक के सामने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे आँखों से लगाता हुआ बोला—मेरे युवा मित्र! तुम सच्चमुच खुदा के प्रिय हो। मैं वह पापी हूँ, जिसने अपनी अज्ञानता में सदैव अपने पापों को पुण्य समझा, इसलिये कि मुझसे

कहा जाता था 'तेरा स्वरूप निष्पाप है।' आज मुझे मालूम हुआ कि मेरे हाथों इसलाम की कितनी हानि हुई। आज से मैं तुम्हारा ही पल्ला पकड़ता हूँ। तुम्हीं मेरे देवता, तुम्हीं मेरे नायक हो। मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हारे ही नेतृत्व में मैं खुदा के दरबार तक पहुँच सकता हूँ।

यह कहते हुए उसने युवक के चेहरे पर दृष्टि डाली, तो उस पर लज्जा की लाली छाई हुई थी। उस कठोरता की जगह मधुर संकोच झलक रहा था।

युवक ने सिर झुकाकर कहा—'यह श्रीमान् की गुणज्ञता है, नहीं तो मेरी क्या सत्ता है !'

तैमूर ने उसे खींच कर अपनी बगल में तरङ्ग पर बैठा लिया और अपने सेनापति को आज्ञा दी 'सारे तुर्क कैदी छोड़ दिए जायँ, उनके अस्त्र वापस कर दिए जायँ और जो माल लूटा गया है, वह सैनिकों में बराबर बाँट दिया जाय।'।

मंत्री तो उधर इस आज्ञा का पालन करने में लगा, इधर तैमूर हबीब का हाथ पकड़े हुए अपने डेरे में गया और दोनों अतिथियों की दावत का प्रबन्ध करने लगा। जब भोजन समाप्त हो गया, तो उसने अपने जीवन की सारी कथा रो-रोकर कह सुनाई, जो आदि से अन्त तक अमिश्रित पशुता और बर्बरता के कृत्यों से भरी हुई थी। उसने यह सब कुछ इस भ्रम में किया कि वह ईश्वरीय

आदेश का पालन कर रहा है। वह खुदा को कौन मुँह दिगाएगा ? रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गईं ।

अन्त में उसने हबीब से कहा मेरे युवा मित्र ! अब मेरा बेड़ा आप ही पार लगा सकते हैं। आपने मुझे राह दिखाई है तो अभीष्ट स्थान पर भी पहुँचाइए। मेरी बादशाहत को अब आप ही संभाल सकते हैं। मुझे अब मालूम हो गया कि मैं उमें विध्वंग के मार्ग पर लिए जाता था। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप उसका मन्त्रिपद स्वीकार करें। देखिये खुदा के लिये इन्कार न कीजिएगा, वरना मैं कहीं का न रहूँगा ।

यजदानी ने विनती की—हुजूर, इनकी गुगाब्रता प्रगट करते हैं, यह आपकी कृपा है, लेकिन अभी इस लड़के की अवस्था ही क्या है। मन्त्रि-पद का भार यह कैसे उठा सकेगा ? अभी तो इसके शिक्षा-ग्रहण के दिन हैं ।

इधर से निपेध होता रहा और उधर तैमूर आप्रह्न करता रहा। यजदानी इन्कार तो कर रहे थे, पर उनकी छाती फूली जाती थी। मूसा आग लेने गए थे, पैगम्बरी मिल गई। यहाँ मौत के मुँह में जा रहे थे, मन्त्रिपद मिल गया, लेकिन यह शंका भी थी कि ऐसे अस्थिर-चित्त आदमी का क्या ठिकाना ? आज प्रसन्न हुए, मन्त्रिपद देने को तयार है, कल अप्रसन्न हो गए तो जीवन की कुशल नहीं। उन्हें हबीब की योग्यता पर भरोसा तो था, फिर भी मन डरता था कि बिराने देश में जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। दरबार वालों में षड्यन्त्र होते ही रहते हैं। हबीब नेक है, समझदार है, अबसर

पहचानता है, लेकिन वह अनुभव कहाँ से आएगा, जो उम्र ही से आता है ?

उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक दिन का अवकाश माँगा और विदा हुए ।

३

हबीब यज़दानी का लड़का नहीं, लड़की थी । उसका नाम उम्मतुल हबीब था । जिस वक्त यजदानी और उसकी पत्नी मुसलमान हुए, तो लड़की की उम्र कुल बारह साल की थी, पर प्रकृति ने उसे बुद्धि और प्रतिभा के साथ विचार-स्वातन्त्र्य भी प्रदान किया था । वह जब तक सत्यासत्य की परीक्षा न कर लेती, कोई बात स्वीकार न करती । माँ-बाप के धर्म-परिवर्तन से उसे अशान्ति तो हुई, पर जब तक इसलाम का अच्छी तरह अध्ययन न कर ले, वह केवल माँ-बाप को प्रसन्न करने के लिए इसलाम की दीक्षा न ले सकती थी । माँ-बाप भी उस पर किसी तरह का दबाव न डालना चाहते थे । जैसे उन्हें अपने धर्म को बदल देने का अधिकार है, वैसे ही उसे अपने धर्म पर आरुढ़ रहने का भी अधिकार है । लड़की को सन्तोष हुआ, लेकिन उसने इसलाम और 'जरतश्त धर्म—दोनों ही का तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ किया, और पूरे दो साल के अन्वेषण और परीक्षण के बाद उसने भी इसलाम की दीक्षा ले ली । माता-पिता फूले न समाए । लड़की उनके दबाव से मुसलमान

नहीं हुई है, बल्कि स्वेच्छा से, स्वाध्याय से और सत्य-निष्ठा से । दो साल तक उन्हें जो एक शंका घेरे रहती थी, वह मिट गई ।

यजदानी के कोई पुत्र न था और उम युग में, जब कि आदमी की तलवार ही सब से बड़ा न्यायालय थी, पुत्र का न रहना संसार का सब से बड़ा दुर्भाग्य था । यजदानी बेटे की अभिलाषा बंदी से पूरी करने लगा । लड़कों ही की भौंति उसकी शिक्षा-दीक्षा होने लगी । वह बालकों के-से कपड़े पहनती, घोड़ों पर सवार होती, शस्त्र-विद्या सीखती और अपने बाप के साथ प्रायः खलीफा बायज़ीद के महलों में जाती और राजकुमारों के साथ शिकार खेलती । इसके साथ ही वह दर्शन, काव्य, विज्ञान और अध्यात्म का भी अभ्यास करती थी । यहाँ तक कि सोलहवें वर्ष में वह सैनिक-विद्यालय में प्रविष्ट हुई और दो साल के भीतर यहाँ की सब से ऊँची परीक्षा पास करके सेना में नौकर हो गई । शस्त्र-विद्या और सैन्य-सञ्चालन-कला में वह इतनी निपुण थी और खलीफ़ा बायज़ीद उसके चरित्र से इतना प्रसन्न था कि पहले ही पहल उसे एकहज़ारी पद मिल गया । ऐसी युवती के चाहने वालों की क्या कमी ? उसके साथ के कितने ही पदाधिकारी, राज-परिवार के कितने ही युवक उस पर प्राण देते थे, पर कोई उसकी दृष्टि में न जँचता था । नित्य ही 'निकाह के संदेश आते रहते थे; पर वह सदा अस्वीकार कर देती थी । वैवाहिक जीवन ही से उसे अरुचि थी । उसकी स्वाधीन प्रकृति इस बंधन में न

पड़ना चाहती थी। फिर नित्य ही वह देखती थी कि युवतियाँ कितनी चाह से ब्याह कर लाई जाती हैं और फिर कितने निरादर से महलों में बन्द कर दी जाती हैं। उनका भाग्य पुरुषों की दया के अधीन है। प्रायः ऊँचे घरानों की महिलाओं से उसको मिलने-जुलने का अवसर मिलता था। उनके मुख से उनकी करुण कथा सुन-सुनकर वह वैवाहिक बंधनों से और भी घृणा करने लगती थी। यजदानी उसकी स्वाधीनता में बिलकुल बाधा न देता था। लड़की स्वाधीन है। उसकी इच्छा हो विवाह करे या क्वॉरी रहे, वह अपनी आप प्रतिनिधि है। उसके पास संदेश आते, तो वह स्पष्ट उत्तर दे देता—मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता, इसका निर्णय वही करेगी। यद्यपि एक युवती का पुरुष-वेष में रहना, युवकों से मिलना-जुलना समाज में आलोचना का विषय था, पर यजदानी और उसकी स्त्री दोनों ही को उसके सतीत्व पर विश्वास था। हबीब के व्यवहार और आचार में उन्हें कोई ऐसी बात दिखाई न देती थी, जिससे उन्हें किसी तरह की शंका होती। यौवन की आँधी और लालसाओं के तूफान में भी वह चौबीस वर्षों की वीरबाला अपने हृदय की सम्पत्ति लिए अटल और अजेय खड़ी थी, मानों सभी युवक उसके सगे भाई हैं।

कुस्तुन्तुनिया में कितने उत्सव मनाये गए, हबीब का कितना सम्मान और स्वागत हुआ, उसे कितनी बधाइयाँ मिली, यह सब लिखने की बात नहीं। शहर नष्ट हुआ जाता था। सम्भव

था, आज उसके महलों और बाजारों से आग की लपटें निकलती होतीं। राज्य और नगर को उस कल्पनातीत विपत्ति से बचाने वाला आदमी कितने आदर, प्रेम, श्रद्धा और उल्लास का पात्र होगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस पर कितने फूलों और कितने लाल और जवाहर की वर्षा हुई, इसका अनुमान तो कोई कवि ही कर सकता है। और नगर की महिलाएँ हृदय के अक्षय भण्डार से असीसे निकाल निकाल कर उस पर लुटाती थीं और गर्व से फूली हुई उमका मुख निहार कर अपने को धन्य मानती थीं। उसने देवियों का मस्तक ऊँचा कर दिया था।

रात को तैमूर के प्रस्ताव पर विचार होने लगा। सामने गद्देदार कुर्सी पर यज्ञदानी था—सौम्य, विशाल और तंजस्वी। उसकी दाहिनी तरफ़ उसकी पत्नी थी, ईरानी पोशाक में, आँखों में दया और विश्वास की ज्योति भरे हुए। बाई तरफ़ उम्मतुल हबीब थी, जो इस समय रमणी-वेष-मोहिनी बनी हुई थी, ब्रह्मचर्य के तेज से दीप्त।

यज्ञदानी ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा—मैं अपनी ओर से कुछ नहीं कहना चाहता; लेकिन यदि मुझे सम्मति देने का अधिकार है, तो मैं स्पष्ट कहता हूँ कि तुम्हें इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार न करना चाहिए। तैमूर से यह बात बहुत दिनों तक छिपी नहीं रह सकती कि तुम क्या हो। उस समय क्या परिस्थिति होगी, मैं नहीं कह सकता। और यहाँ इस विषय में जो कुछ टिप्पणियाँ होंगी, वह तुम मुझ से अधिक जानती हो। यहाँ मैं उपस्थित था और

कुत्सा को मुँह न खोलने देता था, पर वहाँ तुम अकेली रहोगी और कुत्सा को मनमाने आरोप करने का अवसर मिलता रहेगा ।

उसकी पत्नी स्वेच्छा को इतना महत्त्व न देना चाहती थी । बोली—मैंने सुना है, तैमूर आचार का अच्छा आदमी नहीं है । मैं किसी तरह तुम्हें न जाने दूँगी । कोई बात हो जाय तो सारी दुनिया हँसे । यों ही हँसने वाले क्या कम हैं ?

इसी तरह स्त्री-पुरुष बड़ी देर तक ऊँच-नीच सुभाते और तरह-तरह की शंकाएँ करते रहे, लेकिन हबीब मौन साधे बैठी थी । यज्ञदानी ने समझा, हबीब भी उनसे सहमत है । इन्कार की सूचना देने के लिए उठा ही था कि हबीब ने पूछा—आप तैमूर से क्या कहेंगे ?

‘यही, जो यहाँ तय हुआ है ।’

‘मैंने तो अभी कुछ नहीं कहा ।’

‘मैंने तो समझा, तुम भी हमसे सहमत हो ।’

‘जी नहीं । आप उनसे जाकर कह दें, मैं स्वीकार करती हूँ ।’

माता ने छाती पर हाथ रखकर कहा—यह क्या अंधेर करती है बेटी, सोच तो दुनिया क्या कहेगी ?

यज्ञदानी भी सिर थामकर बैठ गए, मानों हृदय में गोली लग गई हो । मुँह से एक शब्द भी न निकला ।

हबीब त्योरियों पर बल डाल कर बोली—‘अम्मीजान, मैं

आपके आदेश से जौ-भर भी मुँह नहीं मोड़ना चाहती। आपको पूरा अधिकार है, मुझे जाने दे या न दे, लेकिन जनता की सेवा का ऐसा अवसर शायद मुझे जीवन में फिर न मिले। इस अवसर को हाथ से खो देने का दुःख मुझे जीवनपर्यंत रहेगा। मुझे निश्चय है कि असीर तैमूर को मैं अपनी पवित्रता, निष्काम और सच्ची भक्ति से अच्छा मनुष्य बना सकती हूँ और शायद उसके हाथों प्राणियों का रक्त इतनी अधिकता से न बहे। वह साहसी है, किंतु निर्दय नहीं। कोई साहसी पुरुष निर्दय नहीं हो सकता। उसने अब तक जो कुछ किया है, धर्म के अंधे जोश में किया है। आज खुदा ने मुझे वह अवसर दिया है कि मैं उसे दिग्वा दूँ कि धर्म, सेवा का नाम है, लूट और कत्ल का नहीं। अपने बारे में मुझे सर्वथा भय नहीं है। मैं अपनी रक्षा आप कर सकती हूँ। मुझे गर्व है कि अपने कर्तव्य को सच्चाई से पालन करके मैं शत्रुओं की जिह्वा भी बंद कर सकती हूँ, और मान लीजिए मुझे असफलता भी हो, तो क्या सच्चाई और स्वत्व के लिए बलिदान हो जाना जीवन की सब से शानदार विजय नहीं है? अब तक मैंने जिस नियम पर जीवन-निर्वाह किया है, उसने मुझे धोखा नहीं दिया और उसी के प्रताप से आज मुझे वह पद प्राप्त हुआ है, जो बड़ों-बड़ों के लिए जीवन का स्वप्न है। ऐसे परीक्षित मित्र मुझे कभी धोखा नहीं दे सकते। तैमूर पर मेरी वास्तविकता प्रकट भी हो जाय, तो क्या भय? मेरी तलवार मेरी रक्षा कर सकती है। शादी के संबंध में मेरे विचार आपको मालूम हैं। अगर मुझे कोई ऐसा आदमी मिलेगा, जिसे मेरी आत्मा स्वीकार करती हो, जिसकी अधीनता में अपने

अस्तित्व को खोकर मैं अपनी आत्मा को ऊँचा उठा सकूँ, तो मैं उसके चरणों पर गिरकर अपने को उसकी भेंट कर दूँगी ।

यजदानी ने प्रसन्न होकर बेटी को गले लगा लिया । उसकी स्त्री इतनी शीघ्र आश्वस्त न हो सकी । वह किसी तरह बेटी को अकेली न छोड़ेगी । उसके साथ वह भी जायगी ।

५

कई महीने बीत गए । युवक हबीब, तैमूर का वजीर है; लेकिन वास्तव में वही बादशाह है । तैमूर उसी की आँखों से देखता है, उसी के कानों से सुनता है और उसी की बुद्धि से सोचता है । वह चाहता है, हबीब आठों पहर उसके पास रहे । उसके सामीप्य में उसे स्वर्ग-का-सा सुख मिलता है । समरकन्द में एक प्राणी भी ऐसा नहीं, जो उससे जलता हो । उसके व्यवहार ने सभी को मुग्ध कर लिया है, क्योंकि वह न्याय से जौ भर भी पीछे नहीं हटता । जो लोग उसके हाथों चलती हुई न्याय की चक्की में पिस जाते हैं, वे भी उससे सद्भाव ही रखते हैं, क्योंकि वह न्याय को आवश्यकता से अधिक कट्ट नहीं होने देता ।

सन्ध्या हो गई थी । राज्य-कर्मचारी जा चुके थे । शमादान में मोम की बत्तियाँ जल रही थीं । अगार की सुगंध से सारा दीवान महक रहा था । हबीब भी उठने ही को था कि चोबदार ने खबर दी—हुजूर, जहाँपनाह तशरीफ़ ला रहे हैं ।

हवीब इस खबर में कुछ प्रसन्न नहीं हुआ। अन्य मन्त्रियों की भाँति वह तैमूर के निकट-वास का भूखा नहीं है। वह हमेशा तैमूर से दूर रहने की चेष्टा करता है। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि उसने शाही दस्तरग्वान^१ पर भोजन किया हो। तैमूर की विलास-सभाओं में भी वह कभी शामिल नहीं होता। उसे जब शांति मिलती है, तब वह एकांत में अपनी माता के पास बैठकर दिन भर का वृत्तांत उससे कहता है और वह उस पर अपनी पसन्द की मुहर लगा देती है।

उसने द्वार पर जाकर तैमूर का स्वागत किया। तैमूर ने सिंहासन पर बैठते हुए कहा—मुझे आश्चर्य होता है कि तुम इस युवावस्था में विरक्तों का-सा जीवन कैसे व्यतीत करते हो हवीब। खुदा ने तुम्हें वह सौंदर्य दिया है। संसार की सुंदर-से-सुंदर कोमलांगी भी तुम्हारी प्रियतमा बनकर अपने को भाग्यवान् समझेगी। मालूम नहीं, तुम्हें खबर है या नहीं, जब तुम अपने मुश्की घोड़े पर सवार होकर निकलते हो, तो समरकन्द की खिड़कियों पर हज़ारों आँखें तुम्हारी एक झलक देखने के लिए प्रतीक्षा में बैठी रहती हैं; पर तुम्हें किसी ने किसी ओर आँखें उठाते नहीं देखा। मेरा खुदा साक्षी है, मैं कितना चाहता हूँ कि तुम्हारे चरण-चिह्नों पर चलूँ; पर दुनिया मेरी गर्दन नहीं छोड़ती। क्यों अपने पवित्र जीवन का जादू मुझ पर नहीं डालते? मैं चाहता हूँ, जैसे तुम दुनिया में रहकर भी दुनिया से अलग रहते हो, वैसे

१ एक बहुत बढ़िया चादर जिस पर बड़े आदमियों का भोजन रक्खा जाता है

जीवन, जिसमे ऊपर उठने की स्फूर्ति ही न रही थी, इम विफल उद्योग के सामने तुच्छ जान पडा ।

उसने मुग्ध कण्ठ से कहा—श्रीमान इम मेवक का इतना सम्मान करते है, यह मेरा अहोभाग्य है, लेकिन मेरा शाही महल में रहना उचित नहीं ।

तैमूर ने पूछा—‘क्यों ?’

‘इसलिए कि जहाँ दौलत बहुत होती है, वहाँ डाके पड़ते हैं और जहाँ आदर-मान अधिक होता है, वहाँ शत्रु भी अधिक होते हैं ।’

‘तुम्हारा शत्रु भी कोई हो सकता है ?’

‘मैं स्वयं अपना शत्रु हो जाऊँगा । मनुष्य का सब से बड़ा शत्रु अहंकार है ।’

तैमूर को जैसे कोई रत्न मिल गया । उसे अपनी मनःतुष्टि का आभास हुआ । ‘मनुष्य का सब से बड़ा शत्रु अहंकार है’ इस वाक्य को मन-ही-मन दोहरा कर उसने कहा—तुम मेरे वश मे कभी न आओगे हबीब ! तुम वह पक्षी हो, जो आकाश मे ही उड सकता है । उसे सोने के पिंजरे मे भी रखना चाहो तो फडफडाता रहेगा । अच्छा, खुदा हाफिज़ !

वह तुरंत अपने महल की ओर चला, मानों उस रत्न को सुरक्षित स्थान में रख देना चाहता हो । यह वाक्य आज पहली

बार उसने न सुना था; पर आज इसमें जो ज्ञान, जो आदेश, जो सद्-प्रेरणा उसे मिली, वह कभी न मिली थी।

६

इस्तखर के प्रदेश से विद्रोह का समाचार आया है। हबीब को शंका है कि तैमूर वहाँ पहुँच कर कहीं नर-संहार न कर दे। वह शांतिमय उपायों से इस विद्रोह को ठण्ठा करके तैमूर को दिखाना चाहता है कि सद्-भावना में कितनी शक्ति है। तैमूर उसे इस दुःसाध्य काम पर भेजना नहीं चाहता, लेकिन हबीब के आग्रह के सामने बंबस है। हबीब को जब और कोई युक्ति न सूझी, तो उसने कहा—सेवक के रहते हुए हुजूर अपनी जान संकट में डाले, यह नहीं हो सकता।

तैमूर मुस्कराया—मेरी जान का तुम्हारी जान के आगे कोई मूल्य नहीं है हबीब। फिर मैंने तो कभी जान की परवाह नहीं की। मैंने दुनिया में कत्ल और लूट के सिवा और क्या स्मृति छोड़ी है? मेरे मर जाने पर दुनिया मेरे नाम को रोएगी नहीं, निश्चय रक्खो। मेरे-जैसे लुटेरे हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन खुदा न करे, तुम्हारे दुश्मनों को कुछ हो गया, तो यह राज्य मिट्टी में मिल जायगा, और तब मुझे भी हृदय में खञ्जर चुभा लेने के सिवा और कोई मार्ग न रहेगा। मैं नहीं कह सकता हबीब, तुमसे मैंने कितना पाया। काश, दस-पाँच साल पहले तुम मुझे मिल जाते, तो तैमूर इतिहास में इतना निन्दित न होता। आज अगर जरूरत पड़े तो मैं अपने जैसे सौ तैमूरों को तुम्हारे ऊपर निखावर

कर दूँ। यही समझ लो-कि तुम मेरी आत्मा को अपने साथ लिए जा रहे हो। आज मैं तुम से कहता हूँ हबीब ! कि मुझे तुम से प्रेम है, वह प्रेम जो मुझे आज तक किसी सुंदरी से नहीं हुआ। प्रेम क्या वस्तु है, इसे मैं अब जान पाया हूँ। मगर इमसे क्या बुराई है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ ?

हबीब ने धड़कते हुए हृदय से कहा—अगर मैं आपकी आवश्यकता समझूँगा तो, सूचना दूँगा।

तैमूर ने दाढ़ी पर हाथ रखकर कहा - जैसी तुम्हारी इच्छा। लेकिन नित्य-प्रति दूत भेजते रहना, नहीं तो शायद मैं बेचैन होकर चला आऊँ।

तैमूर ने कितने स्नेह से हबीब की यात्रा की तैयारियों की। तरह-तरह के आराम और सुखद वस्तुओं का उसके लिए संग्रह किया। उस कोहिस्तान में यह वस्तुएँ कहाँ मिलेगी। वह ऐसा संलग्न था, मानों माता अपनी लड़की को सुसराल भेज रही हो।

जिस समय हबीब सेना के साथ चला, तो सारा समरकन्द उसके साथ था। और तैमूर आँखों पर रुमाल रखे, अपने सिंहासन पर ऐसा सिर झुकाए बैठा हुआ था, मानों कोई पक्षी आहत हो गया हो।

७

इस्तखर अरमनी ईसाइयों का प्रदेश था। मुसलमानों ने उन्हें परास्त करके वहाँ अपना अधिकार जमा लिया था और ऐसे

नियम बना दिए थे, जिनसे ईसाइयों को पग-पग पर अपनी पराधीनता का स्मरण होता रहता था। पहला नियम जज़िया का था, जो हरेक ईसाई को देना पड़ता था, जिससे मुसलमान मुक्त थे। दूसरा नियम यह था कि गिरजों में घण्टा न बजे। तीसरा नियम मदिरा का निषेध था, जिसे मुसलमान 'हराम' समझते थे। ईसाइयों ने इन नियमों का क्रियात्मक विरोध किया और जब मुसलमान अधिकारियों ने शस्त्रबल से काम लेना चाहा, तो ईसाइयों ने विद्रोह कर दिया, मुसलमान सूबेदार को क्रैंड कर लिया और किले पर सलीबी झण्डा उड़ने लगा।

हबीब को यहाँ आए आज दूसरा दिन है, पर इस समस्या को कैसे हल करे। उसका उदार हृदय कहता था, ईसाइयों पर इन बंधनों का कोई अर्थ नहीं, हरेक धर्म का समान रूप से आदर होना चाहिए, लेकिन मुसलमान इन क्रैंदों को उठा देने पर कभी न राजी होंगे। और यह लोग मान भी जायें तो तैमूर क्यों मानने लगा? उसके धार्मिक विचारों में कुछ उदारता आई है, फिर भी वह इन क्रैंदों को उठाना कभी स्वीकार न करेगा, लेकिन क्या वह इसलिए ईसाइयों को दण्ड दे कि वे अपनी धार्मिक स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं। जिसे वह न्याय समझता है उसकी हत्या कैसे करे? नहीं, उसे न्याय का पालन करना होगा, चाहे इसका परिणाम कुछ भी हो। अमीर समझेंगे, मैं ज़रूरत से ज्यादा बढ़ा जा रहा हूँ। कोई हज़र नहीं।

दूसरे दिन हबीब ने प्रातःकाल डंके की चोट घोषणा कराई—जजिया माफ़ किया गया, शराब और घण्टों पर कोई कौद नहीं है।

मुसलमानों में भारी हलचल मच गई। यह कुफ़्र है, अधर्म-पोषण है। अमीर तैमूर ने जिस इमलाम को अपने रक्त से सीचा उसकी जड़ उन्ही के वजीर हबीब पाशा के हाथों खुद रही है। पॉसा पलट गया। शाही फ़ौजे मुसलमानों से जा मिली। हबीब ने इस्तख़र के किले में रक्षा ग्रहण की। मुसलमानों की शक्ति शाही फ़ौज के मिल जाने से बहुत बढ़ गई थी। उन्होंने क़िला घेर लिया और यह समझ कर कि हबीब ने तैमूर से विद्रोह किया है, तैमूर के पास इसकी सूचना देने और परिस्थिति समझाने के लिए दूत भेजा।

८

आधी रात गुजर चुकी थी। तैमूर को दो दिनों से इस्तख़र का कोई समाचार न मिला था। तरह-तरह की शंकाएँ हो रही थीं। मन में पछतावा हो रहा था कि उसने क्यों हबीब को अकेला जाने दिया। माना कि वह बड़ा नीतिकुशल है, पर विद्रोह ने कहीं बल पकड़ लिया, तो मुट्टी भर आदमियों से वह क्या कर सकेगा? और विद्रोह निश्चय बल पकड़ेगा। वहाँ के ईसाई बड़े उदंड हैं। जब उन्हें मालूम होगा कि तैमूर की तलवार में जंग लग गया और उसे अब महलों की ज़िन्दगी अधिक प्रिय है, तो उनकी हिम्मतें

दूनी हो जायँगी। हबीब कही दुश्मनों में घिड़ गया, तो बड़ा अंधेर हो जायगा।

उसने अपनी जाँघ पर हाथ मारा और करवट बदल कर अपने ऊपर झुँझलाया। वह इतना हतोत्साह क्यों हो गया ? क्या उसका तेज और शौर्य उससे विदा हो गया ? जिसका नाम सुनकर दुश्मनों में कम्पन पड़ जाता था, वह आज अपना मुँह छिपाकर महलों में बैठा हुआ है। संसार की आँखों में इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि तैमूर अब मैदान का शेर नहीं, कालीन का शेर हो गया। हबीब देवता है, जो मनुष्य की बुराइयों से परिचित नहीं। जो करुणा, हृदय का स्वच्छ और निःस्वार्थ है। वह क्या जाने मनुष्य कितना धूर्त हो सकता है। शाति के दिनों में तो ये बातें जाति और देश को उन्नति के मार्ग पर ले जाती हैं, पर युद्ध में, जब कि आसुरी जोश का भारी तूफान उठता है, इन खूबियों को अवकाश नहीं। उस वक्त तो उसी की जीत होती है, जो मानव-रक्त का रंग खेले, खेतों-खलियानों की होली जलाए, जङ्गलों को बसाए और बस्तियों को उजाड़ दे। शाति का नियम युद्ध के नियम से बिलकुल अलग है।

सहसा चोबदार ने इस्तखर से एक दूत के आने की खबर दी। दूत ने ज़मीन चूमी और एक किनारे सम्मानपूर्वक खड़ा हो गया। तैमूर का आतंक ऐसा छा गया कि जो कुछ कहने आया था वह सब भूल गया।

तैमूर ने त्योरियाँ चढ़ाकर पूछा—क्या समाचार लाया

है ? तीन दिन के बाद आया भी तो इतनी रात गये ?

दूत ने फिर जमीन चूमी और बोला—हुजूर, वजीर साहब ने जज़िया माफ़ कर दिया ।

तैमूर गरज उठा—क्या कहता है, जज़िया माफ़ कर दिया ?

‘हाँ, हुजूर ।’

‘किसने ?’

‘वज़ीर साहब ने ।’

‘किसके हुक्म से ?’

‘अपने हुक्म से हुजूर ।’

‘हूँ ।’

‘और हुजूर, शराब का भी हुक्म दे दिया ।’

‘हूँ ।’

‘गिरजों मे घण्टे बजाने का भी हुक्म हो गया ।’

‘हूँ ।’

‘और खुदावन्द ! ईसाइयों से मिलकर मुसलमानों पर हमला कर दिया ।’

‘तो मैं क्या करूँ ।’

‘हुजूर हमारे स्वामी हैं । अगर हमारी कुछ मदद न हुई, तो वहाँ एक मुसलमान भी जीवित न बचेगा ।’

‘हबीब पाशा इस समय कहाँ है ?’

‘इस्तख़र के क़िले मे हुजूर ।’

‘और मुसलमान क्या कर रहे है ?’

‘हमने ईसाइयों को किले में घेर लिया है।’

‘उन्ही के साथ हबीब को भी ?’

‘हाँ हुजूर, वह राजद्रोही हो गए हैं।’

‘और इसलिए मेरे विश्वसनीय इसलाम के सेवकों ने उन्हें कैद कर रक्खा है। सम्भव है मेरे पहुँचते-पहुँचते उन्हें जीवन से रहित भी कर दें। नीच ! दूर हो जा मेरे सामने से। मुसलमान समझते हैं, हबीब मेरा नौकर है और मैं उसका स्वामी। यह गलत है, भूठ है। इस राज्य का स्वामी हबीब है, तैमूर उसका तुच्छ गुलाम है। उसके फ़ौसले में तैमूर हस्तक्षेप नहीं कर सकता। निस्सन्देह जज़िया माफ़ होना चाहिए। मुझे कोई अधिकार नहीं है कि विधर्मियों से उनके धर्म का कर लूँ। कोई अधिकार नहीं है, अगर मस्जिद में बाँग होती है, तो ग़िरजा में घण्टा क्यों न बजे ? घण्टे के शब्द में अधर्म नहीं है। सुनता है नीच ! घण्टे की आवाज़ में कुफ़्र नहीं है। काफ़िर वह है, जो दूसरों का अधिकार छीन ले, जो ग़रीबों को सताए, जो कपटी हो, स्वार्थी हो। काफ़िर वह नहीं, जो मिट्टी या पत्थर के टुकड़े में ईश्वर का प्रकाश देखता हो, जो नदियों और पहाड़ों में, दरख़्तों और झाड़ियों में, परमात्मा का वैभव प्राप्त करता है। वह हमसे और तुझसे अधिक ईश्वर-भक्त है, जो मस्जिद में खुदा को बंद समझते हैं। तू समझता है, मैं कुफ़्र बक रहा हूँ ? किसी को काफ़िर समझना ही कुफ़्र है। हम सब एक ईश्वर की सन्तान हैं, सब। बस जा उन राजद्रोही मुसलमानों से कह दे, अगर तुरंत घेरा न उठा लिया गया, तो तैमूर प्रलय की तरह आ पहुँचेगा।’

दूत हतबुद्धि-सा खड़ा ही था कि बाहर खतरे का बिगुल बज उठा और सेनाएँ किसी समर-यात्रा की तैयारी करने लगी ।

६

तीसरे दिन तैमूर इस्तरखर पहुँचा, तो किले का घेरा उठ चुका था । किले की तोपों ने उसका स्वागत किया । हबीब ने समझा तैमूर ईसाइयों को दंड देने आ रहा है । ईसाइयों के हाथ-पाँव फूले हुए थे, मगर हबीब युद्ध के लिए तैयार था । ईसाइयों के स्वत्व की रक्षा में यदि उसकी जान भी जाय, तो कोई शोक नहीं । इस विषय पर किसी तरह का समझौता नहीं हो सकता । तैमूर अगर तलवार से काम लेना चाहता है, तो उसका जवाब तलवार से दिया जायगा ।

मगर यह क्या बात है ! शाही सेना सफ़ेद भण्डा दिखा रही है । तैमूर लड़ने नहीं, संधि करने आया है । उसका स्वागत दूसरी तरह का होगा । ईसाई सरदारों को साथ लिए हबीब किले से बाहर निकला । तैमूर अकेला घोड़े पर सवार चला आ रहा था । हबीब घोड़े से उतरा और झुककर सलाम किया । तैमूर भी घोड़े से उतर पड़ा और हबीब का माथा चूम लिया और बोला—मैं सब सुन चुका हूँ हबीब ! तुमने बहुत अच्छा किया और वही किया जो तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं कर सकता था । मुझे कर लेने का या ईसाइयों के धार्मिक अधिकार छीनने का कोई हक न था । मैं आज दरबार करके इन बातों का समर्थन कर दूँगा और तब मैं एक ऐसा प्रबन्ध करूँगा, जो कई दिन से मेरी बुद्धि में आ रहा

है, और मुझे आशा है कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे। स्वीकार करना पड़ेगा।

हबीब के चेहरे का रंग उड रहा था। कहीं भेद खुल तो नहीं गया? वह कौनसा प्रबन्ध है, उसके मन में खलबली पड़ गई।

तैमूर ने मुस्करा कर पूछा—तुम मुझ से लड़ने को तैयार थे?

हबीब ने शरमाते हुए कहा—अधिकार के सामने अमीर तैमूर की भी कोई स्थिरता नहीं।

‘वेशक-वेशक! तुम में देवताओं का दिल है, तो शेरों का साहस भी है, लेकिन दुःख यही है कि तुमने यह अनुमान ही क्यों किया कि तैमूर तुम्हारे निर्णय को रद्द कर सकता है? यह तुम्हारा व्यक्तित्व है, जिसने मुझे बतलाया है कि देश किसी पुरुष की घरेलू संपत्ति नहीं, बल्कि एक ऐसा वृक्ष है जिसकी हरेक शाखा और पत्ती एक-सा भोजन पाती है’।

दोनों किले में प्रविष्ट हुए। सूरज डूब चुका था। आन-की-आन में दरबार लग गया और उसमें तैमूर ने ईसाइयों के धार्मिक अधिकारों को स्वीकार किया।

चारों तरफ से आवाज आई—खुदा हमारे शाहंशाह की आयु दीर्घ करे।

तैमूर ने उसी प्रकरण में कहा—मित्रो, मैं इस आशीर्वाद का पात्र नहीं हूँ। जो वस्तु मैंने आपसे बलपूर्वक छीन ली थी, उसे आपको वापस देकर मैं आशीर्वाद का काम नहीं कर रहा

हूँ। इससे कहीं अधिक उचित यह है कि आप मुझे धिक्कार दें कि मैंने इतने दिनों तक आपके अधिकारों से आपको वंचित रक्खा।

चारों तरफ से आवाज आई—धन्य हो ! धन्य हो !!

‘मित्रो, उन अधिकारों के साथ-साथ मैं आपका राज्य भी आपको वापस करता हूँ, क्योंकि खुदा की दृष्टि में सभी पुरुष समान हैं और किसी जाति या पुरुष को दूसरी जाति पर शासन करने का हक नहीं है। आज से आप अपने बादशाह हैं। मुझे उम्मीद है कि आप भी मुस्लिम जनता को उसके उचित अधिकारों से वंचित न करेंगे। अगर कभी कोई ऐसा अवसर आए कि कोई बलवान जाति आपकी स्वतन्त्रता छीनने का यत्न करे, तो तैमूर आपकी मदद करने को सदा तैयार रहेगा।’

१०

क़िल्ले में उत्सव समाप्त हो चुका है। उमरा और अधिकारि-वर्ग विदा हो चुके हैं। दीवाने-खास में सिर्फ तैमूर और हबीब रह गये हैं। हबीब के मुख पर आज स्मित हास्य की वह छटा है, जो सदैव गंभीरता के नीचे दबी रहती थी। आज उसके कपोलों पर जो लाली, आँखों में जो नशा, अंगों में जो चंचलता है, वह तो और कभी नज़र न आई थी। वह कई बार तैमूर से शोखियाँ कर चुका है, कई बार हँसी कर चुका है। उसकी युवती चेतना, पद और अधिकार को भूलकर चहकती फिरती है।

सहसा तैमूर ने कहा—हबीब, मैंने आज तक तुम्हारी हरेक बात मानी है । अब मैं तुम से वह बात कहता हूँ, जिसकी मैंने पहले चर्चा की थी, उसे तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा ।

हबीब ने धड़कते हुए हृदय से सिर झुकाकर कहा—आज्ञा कीजिए !

‘पहले प्रण करो कि तुम स्वीकार करोगे ।’

‘मैं तो आपका सेवक हूँ ।’

‘नहीं, तुम मेरे मालिक हो, मेरे जीवन का प्रकाश हो । तुमसे मैंने जितना लाभ उठाया है, उसका अनुमान नहीं कर सकता । मैंने अब तक राज्य को अपने जीवन की सब से प्रिय वस्तु समझा है । इसके लिए मैंने सब कुछ किया, जो मुझे न करना चाहिए था । अपनों के रक्त से भी इन हाथों को कलंकित किया, परायों के रक्त से भी । मेरा काम अब समाप्त हो चुका । मैंने अब नींव रख दी, इस पर महल बनाना तुम्हारा काम है । मेरी यही प्रार्थना है कि आज से तुम्हीं इस राज्य की बागडोर सँभालो, मेरे जीवन में भी और मेरे मरने के बाद भी ।’

हबीब ने आकाश में उड़ते हुए कहा—इतना बड़ा बोझ ! मेरे कन्धे इतने शक्तिशाली नहीं हैं ।

तैमूर ने दीन स्वर में कहा—नहीं, मेरे प्रिय मित्र ! मेरी यह प्रार्थना तुम्हें माननी ही पड़ेगी ।

हबीब की आँखों में हँसी थी, अधरों पर संकोच । उमने धीमे स्वर से कहा—स्वीकार है ।

तैमूर ने प्रफुल्लित स्वर में कहा—खुदा तुम्हारी दीर्घायु करे ।

‘लेकिन अगर आपको मालूम हो जाय कि हबीब एक कच्ची अकल की क्वॉरी बालिका है तो ?’

‘तो वह मेरी बादशाहत के साथ मेरे दिल की भी रानी हो जायगी ।’

‘आपको बिलकुल आश्चर्य नहीं हुआ ?’

‘मैं जानता था ।’

‘कब से ?’

‘जब तुमने पहली बार अपनी तिरछी नृष्टि से मुझे देखा ।’

‘मगर आपने छिपाया खूब !!’

‘तुम्हीं ने तो सिखाया । शायद मेरे सिवा यहाँ किसी को यह बात मालूम नहीं ।’

‘आपने कैसे पहचान लिया ?’

तैमूर ने मतवाली आँखों से देखकर कहा—यह न बताऊँगा ।

यही हबीब तैमूर की बेगम ‘हमीदा’ के नाम से मशहूर है ।

श्री जनेन्द्रकुमार

जीवन-परिचय

श्री जैनेन्द्र दिल्ली के रहने वाले है । अभी युवक ही है । आठ दस वर्ष से उपन्यासक्षेत्र में उतरे हैं, फिर भी अपनी योग्यता, चमत्ता तथा प्रतिभा के बल उत्कृष्ट उपन्यासकारों में गिने जाने लगे है । आपने अपने 'परख' नामक उपन्यास पर प्रयाग की हिंदुस्तानी एकेडमी से ५००) का पारितोषिक भी प्राप्त किया है ।

आप हर तरह मौलिक है—जैसे भाव में वैसे ही भाषा में । वर्तमान के अनुकरण में ही आपको कला नहीं दीखती । आप अपनी रचनाओं में उज्ज्वल भविष्य की झाँकी रखते है । तपोभूमि नामक उपन्यास में यह बात स्पष्ट दीख पड़ती है ।

वातायन में आपकी कहानियों का संग्रह है । इनमें से बहु-संख्यक कहानियाँ मन में घर कर लेने वाली हैं । आपके करुण दृश्य हृदय में चुभ जाते हैं । आपके पात्र आँखों आगे बोलते दिखाई देते हैं । आपकी भाषा कही उछलती-कूदती, कही मदमाती, कहीं संयत और कहीं प्रगल्भ बनकर आगे बढ़ती है ।

चलते चलते आप देहली के मुहाविरों का प्रयोग कर जाते हैं पर इनसे भाषा की रुचिरता में किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़ता ।

अभी आपने थोड़ा ही लिखा है, किन्तु जितना लिखा है उतना ही आपको चार चाँद लगाने के लिए पर्याप्त है । हिंदी के कथा-साहित्य को आपसे बड़ी आशा है ।

अपना अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की एक बेंच पर बैठ गये ।

नैनीताल की संख्या धीरे धीरे उतर रही थी । रुई के रेशे से, भाप से, बादल हमारे सिरों को छू छूकर बेरोक घूम रहे थे । हलके प्रकाश और अधियारी से रंगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफ़ेद और फिर जरा देर में अरुणा पड़ जाते । वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे ।

पीछे हमारे पोलो वाला मैदान फैला था । सामने अँगरेजों का एक प्रमोद-गृह था जहाँ सुहावना रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल ।

ताल में किश्तियाँ अपने सफ़ेद पाल उड़ाती हुई एक दो अँगरेज़ यात्रियों को लेकर, इधर से उधर खेल रही थीं और कहीं

कुछ अँगरेज एक एक देवी सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी मुई सी शक्त की डोंगियों को मानों शर्त बांधकर सगपट दौड़ा गहे थे । कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बन्सी पानी में डालते सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे ।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकागियाँ भरते हुए हॉकी खेल रहे थे । शोर, मार-पीट, गाली-गल्लोज भी जैसे खेल का ही अंश था । इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगाकर मानों खत्म कर देना चाहते थे । उन्हें आगे की चिन्ता नहीं, बीते का ख्याल नहीं था । वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे । वे शब्द की सम्पूर्णा सचाई के साथ जीवित थे ।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरत प्रवाह आ रहा था और जा रहा था । उसका न और था न छोर । यह प्रवाह कहाँ जा रहा था और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है ? सब उमर के सब तरह के लोग उसमें थे । मानों मनुष्यता के नमूनों का बाजार सजकर सामने से इठलाता निकला चला आ रहा हो ।

अधिकार-गर्व में तने अँगरेज उसमें थे, और चिथड़ों से सजे, घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचल कर शून्य बना लिया है, और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये हैं ।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अँगरेज बच्चे थे और पीली-पीली आँखें फाड़े, पिता की उँगली पकड़कर चलते हुए

अपने हिन्दुस्तानी नौनिहाल भी थे ।

अँगरेज पिता थे जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हँस रहे थे और खेल रहे थे । उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुजुर्गी को अपने चारों तरफ़ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्ष्णों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे ।

अँगरेज़ रमणियाँ थीं, जो धीरे नहीं चलती थीं, तेज चलती थीं । उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में लाज आती थी । कसरत के नाम पर घोड़ों पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़े के साथ ही साथ, ज़रा जी होते ही, किसी हिन्दुस्तानी पर भी कोड़े फटकार सकती थीं । वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निःशंक, निरापद, इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चली जा रही थीं ।

उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मियाँ, सड़क के बिलकुल किनारे-किनारे, दामन बचातीं और सम्हालती हुई, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक-लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती में आँख गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थीं ।

इसके साथ ही भारतीयता का एक और नमूना था । अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अँगरेजी-दाँ पुरुषोपम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुँह फेर लेते थे और अँगरेज को देखकर आँखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे । वैसे वह अकड़कर चलते थे,—मानों भारत भूमि को

इसी अकड़ के साथ कुचल-कुचल कर चलने का उन्हे अधिकार मिला है।

२

घण्टे पर घण्टे सरक गये। अंधकार गाढा हो गया। बादल सफ़ेद होकर जम गये। मनुष्यों का वह तौता एक-एक कर लीग हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सड़क पर छतरी लगा कर निकल रहा था। हम वही के वही बैठे थे। मर्दी सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिर कर देखा। वह लॉन बर्फ़ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पडा था।

सब सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियाँ दीप-मालिका सी जगमगा रही थीं। वह जगमगाहट दो मील तक फैले-हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिंबित हो रही थी। और दर्पण का काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह तल उन प्रतिबिंबों को सौ-गुना हज़ार-गुना करके, उनके प्रकाश को मानों एकत्र और पुंजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनियाँ तारों-सी जान पड़ती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सब को ढँक दिया। रोशनियाँ मानों मर गईं। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले काले भूत से पहाड भी इस सफ़ेद पर्दे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानों यह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ

इस घनी, गहरी सफ़ेदी में दब गया। जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैलकर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर नीचे, चारों तरफ़, वह निर्भेद्य, सफ़ेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था। वह टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन, चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार शुभ्र शून्य में, कहीं से ग्यारह बार टन्-टन् हो उठा। जैसे कहीं दूर कब्र में से आवाज़ आ रही हो!

हम अपने अपने होटलों के लिए चल दिये।

३

रास्ते में दो मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवर-कोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी, पर वहाँ तो ऊपर नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कम्बल और होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिलकुल किनारे एक बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। भटपट होटल पहुँच कर, इन भीगे कपड़ों

से छुट्टी पा, गरम बिस्तर में छिपकर सो रहना चाहता था। पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, और कब थमेगी—इसका क्या कुछ ठिकाना है! और वह कैसी क्या होगी—इसका भी कुछ अंदाज है! उन्होंने कहा—आओ, जरा यहाँ बैठे।

हम उस चूने कुहरे में रात के ठीक एक बजे, तालाब के किनारे की उस भीगी, बर्फीली, ठंडी हो रही लोहे की बेच पर बैठ गये।

५—१०—१५ मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैंने खिन्नताकर कहा—

‘चलिए भी...’

‘अरे, ज़रा बैठो भी .’

हाथ पकड़ कर जरा बैठने के लिए जब इस जोर से बैठा लिया गया, तो और चारा न रहा—लाचार बैठ रहना पडा। सनक से छुटकारा आसान न था, और यह ज़रा बैठना भी ज़रा न था।

चुप-चाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले—

‘देखो, वह क्या है?’

मैंने देखा—कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली सी मूरत हमारी तरफ़ बढ़ी आ रही थी। मैंने कहा—
होगा कोई।

तीन गज दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर है, नंगे सिर। एक मैली सी कमीज लटकाये है।

पैर उसके न जाने कहाँ पड रहे थे, और वह न जाने कहाँ जा रहा है—कहाँ जाना चाहता है! उसके कदमों में जैसे कोई न अगला है, न पिछला है, न दायों है, न बायों है।

पास की चुंगी की लालटैन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा—कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड गया है, आँखें अच्छी बड़ी पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियों खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाक़ी दुनिया। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी—ए।

उसने जैसे जाग कर देखा और पास आ गया।

‘तू कहाँ जा रहा है रे?’

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

‘दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है?’

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

'कहाँ सोयेगा ?'
 'यहीं कहीं ।'
 'कल कहाँ सोया था ?'
 'दुकान पर ।'
 'आज वहाँ क्यों नहीं ?'
 'नौकरी से हटा दिया ।'
 'क्या नौकरी थी ?'
 'सब काम । एक रुपया और जूटा ग्वाना ।'
 'फिर नौकरी करेगा ?'
 'हाँ. '
 'बाहर चलेगा ?'
 'हाँ. '
 'आज क्या खाना खाया ?'
 'कुछ नहीं ।'
 'अब खाना मिलेगा ?'
 'नहीं मिलेगा ।'
 'यों ही सो जायगा ?'
 'हाँ...'
 'कहाँ ?'
 'यहीं कहीं ।'
 'इन्हीं कपड़ों से ?'

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा । आँखें मानो बोलती थीं— 'यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न !'

‘माँ-बाप है ?’

‘हैं ।’

‘कहाँ ?’

‘१५ कोस दूर गाँव में ।’

‘तू भाग आया ?’

‘हाँ ।’

‘क्यों ?’

‘मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं,—सो भाग आया । वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं । बाप भूखा रहता था और मारता था । माँ भूखी रहती थी और रोती थी । सो भाग आया । एक साथी और था । उसी गाँव का था,—मुझ से बड़ा । दोनों साथ यहाँ आये । वह अब नहीं है ।’

‘कहाँ गया ?’

‘मर गया ।’

इस ज़रा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गई । —
मुझे अचरज हुआ, दर्द हुआ, पूछा— ‘मर गया ?’

‘हाँ, साहब ने मारा, मर गया ।’

‘अच्छा हमारे साथ चल ।’

वह साथ चल दिया । लौटकर हम वकील दोस्तों के होटल में पहुँचे ।

‘वकील साहब !’

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतर कर आये । काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोजे-चढ़े पैरों में चप्पल थी । स्वर में हलकी-सी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी ।

‘ओ-हो, फिर आप !—कहिये ?’

‘आपको नौकर की जरूरत थी न ? -देगिया, यह लड़का है ।’

‘कहाँ से लाये ?—इसे आप जानते हैं ?’

‘जानता हूँ—यह बेईमान नहीं हो सकता ।’

‘अजी ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं । बच्चे बच्चे में गुण छिपे रहते हैं । आप भी क्या अजीब हैं—उठा लाये कहीं से—‘लो जी, यह नौकर लो’ ।’

‘मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा ।’

‘आप भी...जी, बस खूब हैं । ऐसे गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या क्या लेकर चम्पत हो जाय ।’

‘आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूँ ।’

‘माने क्या खाक ?—आप भी...जी अच्छा मज़ाक करते हैं ।—अच्छा, अब हम सोने जाते हैं ।’

और वह चार रुपये रोज के किराये वाले कमरे में सजी मसहरी पर झटपट सोने चले गये ।

४

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर कुछ टटोला । पर भूट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर वे मेरी ओर देखने लगे ।

‘क्या है ?’—मैंने पूछा ।

‘इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था’ अँगरेज़ी में मित्र ने कहा—‘मगर दस दस के नोट हैं ।’

‘नोट ही शायद मेरे पास है,—देखूँ !’

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे । हम फिर अँगरेज़ी में बोलने लगे । लडके के दाँत बीच बीच में कटकटा उठते थे ।—कड़ाके की सर्दी थी ।

मित्र ने पूछा—‘तब ?’

मैंने कहा—‘दस का नोट ही दे दो ।’ सकपका कर मित्र मेरा मुँह देखने लगे—‘अरे यार, बजट बिगड़ जायगा । हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं !’

‘तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है ।’—मैंने कहा ।

मित्र चुप रहे । जैसे कुछ सोचते रहे । फिर लडके से बोले—

‘अब आज तो कुछ नहीं हो सकता । कल मिलना । वह

‘होटल डि-पव’ जानता है ? वही कल १० बजे मिलेगा ?’

‘हाँ...कुछ काम देगे हुजूर ?’

‘हाँ-हाँ ढूँढ़ दूँगा ।’

‘तो जाऊँ ?’—लड़के ने निराश आशा से पृछा ।

‘हाँ’—ठंडी साँस खींच कर फिर मित्र ने पृछा—‘कहाँ सोयेगा ?’

‘यही कही; बेच पर, पेंडू के नीचे—किसी दुकान की भट्टी में ।’

बालक कुछ ठहरा । मैं असमंजस में रहा । तब वह प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया । हम भी होटल की ओर बढ़े । हवा तीखी थी—हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी ।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा—‘भयानक शीत है । उसके पास कम—बहुत कम कपड़े... !’

‘यह संसार है यार !’ मैंने स्वार्थ की फ़िलासफ़ी सुनाई ‘चलो, पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना ।’

उदास होकर मित्र ने कहा—‘स्वार्थ !—जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो—या बेहयाई !’

दूसरे दिन नैनीताल-स्वर्ग के किसी 'काले गुलाम पशु' के दुलार का वह बेटा—वह बालक, निश्चित समय पर हमारे 'होटल-डि-पव' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताली सैर खुशी खुशी खत्म कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाते बैठ रहने की ज़रूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला—पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुर कर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस वही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, सुट्टियों और पैरों पर बरफ़ की हलकी सी चादर चिपक गई थी। मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफ़ेद और ठण्डे कफ़न का प्रबंध कर दिया था।

सब सुना और सोचा—अपना अपना भाग्य !

निर्मम

अभी सिंहगढ़ ४ कोस है। दस कभी के बज चुके। ठीक दस बजे तीनों घुड़सवारों को शिवाजी की हाजिरी में सिंहगढ़ पहुँच जाना चाहिए था।

शिवा की बात टलती नहीं, टलती है तो अनर्थ हो जाता है। समय और कार्य का विभाग ही उसका ऐसा नपा-तुला होता है कि जरा से काम की ज़रा ढील और जरा देर सारी स्क्रीम को ढा देती है, कार्य-सिद्धि की शृंखला को ही विशृंखल कर देती है। और शिवा वह व्यक्ति है जो सब कुछ सह सकता है, पर असफलता नहीं सह सकता। जिसने फ़ेल होना जाना ही नहीं। जिसके जीवन की डोर विजय-विजय-विजय के मनके पहनकर माला बनकर ही दम लेगी, जिसे इतिहास के अनुशीलन करने वाले साहस-प्रार्थी व्यक्ति फेर-फेर कर धन्य होंगे। जो चाहता है, जिसमें हाथ लगाया है, वही यदि पूरा होने से रह जाय तो शिवा शिवा नहीं।

कौन है, जो उसे पूरा होने से रोक ले। कहीं भी यदि उमें अमिद्धि मिले, तो मानों वही उसकी मौत होगी। वह उम धातु का बना है जिसके अलौकिक वीर बने होते हैं। जिमका अलचोन्द्र बना था, जिसके अशोक, सीजर, शार्लमान बने थे, और जिमका नैपोलियन बना था। जो धातु मुडना नहीं जानती, टूट भले ही जाय।

तीनों घुडसवार जो घने जंगल, घने अंधेरे और घने कुहरे को, जमी हुई सन्नाहट और वैसी ही जमी हुई शांति को चीरते हुए, तेजी से आगे बढ़ रहे हैं, शिवाजी के इस अकंप शिवा-पन को मन-ही-मन, अनुभव-द्वारा, खूब जानते हैं। थक रहे हैं, हाँप रहे हैं, बढ़े चले जा रहे हैं, आपस में बोलने का भी अवकाश नहीं ले रहे हैं,—यह देखने कि 'अब क्या वीनती है' वह, और हम भी, आत्मा की शपथ खाकर कह सकते हैं कि उन्होंने पूर्ण तत्परता, चुस्ती और मुस्तैदी से अपना कर्तव्य निबाहा है।—किंतु १० तो बज चुके हैं।

बीजापुर की खबर लाने के लिए उन्हें भेजा गया था। त्र्यम्बक उनका नेता है, घोरपड़े और शिवराव उसके सहायक। त्र्यम्बक शिवा का बहुत ही अपना आदमी है, जोखम और विश्वास की जगह उसे ही भेजा जाता है। उसे भेजकर शिवा मानों उस संबंध में बिलकुल निश्चिन्तता प्राप्त कर लेता है।

त्र्यम्बक बोला—'महाराज यदि न मिलें—?'

यह सम्भावना तीनों ही के मन में थी, किंतु इतनी अनि-

छकर थी कि जैसे वह उसे स्वीकार करने से डरते थे। शिवराव ने कहा—‘ऐसा नहीं होगा।’

घोरपड़े ने भी कहा—‘महाराज, हमारे संवाद के लिए अवश्य प्रतीक्षा करेंगे।’

किंतु त्र्यम्बक को सन्तोष नहीं मिलता। इन मुसीबत के दिनों में जब चारों ओर फैले प्रत्येक क्षण और प्रत्येक पग में विपत्ति और विजय है, जब समय का ठिकाना नहीं है और ठिकाने का भी ठिकाना नहीं है, तब नियत दस बजे के बारह बज जाना कोई छोटी बात नहीं। वह इसी भारी भूल के बोझ और मनस्ताप के नीचे मानों पिसा जा रहा है। उसने कहा—‘घोरपड़े, मालूम नहीं क्या हो गया हो। संदेह नहीं, दस बजे महाराज वहाँ अवश्य होंगे, पर अब—?... . बीजापुर में ही हम को समाचार मिला था कि सिंहगढ़ आशंका से खाली नहीं। न जाने किस पल धावा हो जाये?’

घोरपड़े ने उत्तर में केवल धोड़े की चाल और तेज़ कर दी।

तीनों बढ़े चले। चुप—चारों ओर सन्नाटा भरी चुपचुपाहट थी। मानों नीरव प्रकृति, इन तीनों के भीतर उबलती हुई आशंका को अपने व्यंग-भौन से और भी तीखी बना देना चाहती हो।

सिंहगढ़ पास आ गया। अंधेरे में से उसके बुर्ज के कंगारों का आकार धीमा-धीमा चीह्न पड़ता था। तभी कोई उनकी राह में आया, जिसने पूछा—कौन ?

इस 'कौन' की स्वर और ढंग एकदम मशक कर देने वाला था। फिर भी त्र्यम्बक ने दहाडा

'ऊँ, हर हर !'

उस व्यक्ति ने भट सं चिल्ला दिया—'मारो काफिरों को' और दल-के-दल दुश्मन उस अंधेरे में से फट पड़े।

युद्ध छिडा। मराठे मराठे थे, शिवा जी के साथी थे, यानी वीर थे, और साथ ही होशियार भी थे। फिर अंधेरे का संयोग मानों भाग्य ने ही सामने ला धरा था। तीखी मार भी वे देते रहे, और पीछे अपना रास्ता भी बनाते रहे।

अपनी हानि और मराठों के पीछे हटने को देख दुश्मनों ने संतोष ही मान रखना ठीक समझा।

वे तीनों निरापद तो हुए किंतु सिंहगढ़ तक पहुँचने का इरादा अब भी उनका पक्का ही रहा। संदेह नहीं, उन्हें जगह-जगह ऐसी ऐसी ही मुठभेड़ करनी होगी,—किंतु क्या इससे वह शिवा की आज्ञा से मुड़े ?

मतलब कि कभी इधर और कभी उधर, इस तरह चारों ओर से, सिंहगढ़ पहुँचने का यत्न करते रहे। बीसियों हमले उन्हें सहने पड़े, और बहुत आहत हो गए। इधर रात भी बीत चली। किंतु यत्न छोड़ें, तो मराठे कैसे ?

अंत में थकान से चूर हो गए थे, लोहू से लुहान हो गए थे, फिर भी सिंहगढ़ पहुँचने की तदबीर में लगे थे—यद्यपि बड़ी

हताशा के साथ और जीवन-विसर्जन के श्रृंगार विश्वास के साथ । तभी एक खेतिहर से पता मिला, शिवा जी सिंहगढ़ में नहीं हैं ।

रात होते ही गढ़ पर अचानक धावा हुआ था । दस, साढ़े-दस, ग्यारह बजे तक, कई गुनी शत्रुशक्ति के सामने शिवा गढ़ को संभाले रहे और ठहरे रहे थे । बहुतेरा कहा गया कि वह यहाँ से चलें । किंतु ग्यारह बजे से पहले उन्होंने वहाँ से टलना कभी स्वीकार न किया । भेदिये चारों ओर तैनात रहते थे । जब ग्यारह बजे का यह समाचार लाकर उन्होंने शिवा को दे दिया कि एक मील तक त्र्यम्बक नहीं है, तब उन्होंने गढ़ छोड़ने में फिर क्षण-भर देर न की ।

त्र्यम्बक और उसके साथी इस सूचना पर, अपने को प्रत्येक अनिष्ट और हर तरह के दण्ड के लिए तैयार करके, लौट चले ।

२

जंगल में एक ऊँची सी टेकड़ी पर शिविर पड़ा है । किंतु शिवा उससे अलग, बहुत दूर, आत्म-त्रस्त, आत्म-ग्रस्त और आत्म-व्यस्त भाव से कुछ सोचता हुआ टहल-सा रहा है । शिविर के काम से निबट चुका है, सब ताक़ीदे दे चुका है,—इस तरह अवकाश निकालकर अब अपने से निबटने का काम वह, यहाँ सिंग झुकाकर टहलता-टहलता, कर रहा है । सिद्धियों, सफलताओं और विजयों से ठसाठस भरे हुए अपने व्यस्त जीवन में से, वह इसी तरह कभी-कभी कुछ घड़ियाँ चुराकर आत्मनिमग्नता पाया करता है ।

इन बहुमूल्य निठल्ली धँडियों में, जो बड़ी कठिनाई में मिल पाती हैं और बहुत थोड़ी देर ठहर पानी हैं, मानों उमकें जीवन की सच्ची अनुभूतियाँ, कसक उठने वाली स्मृतियाँ और प्रज्वलित कर देने वाली चिन्ताएँ,—मानों जीवन की समग्र चेतनता,—अपने डोरे समेटकर आ इकट्ठी होती हैं । नव वह डोरे फेलते हैं, उलझते हैं और मुलझते हैं, किंतु उनसे मुलझते नहीं जिनसे उलझ जाते हैं । इन उलझनों में फँसकर शिवा बड़ी व्यथा पाता है । मुलझा तो सकता नहीं, क्योंकि मुलझाने का अवकाश उसके पास बहुत थोड़ा है, इसलिए उलझते रहने में ही वह थोड़ा आनन्द ले लेता है । यह व्यथा जो मजे से भरी है, और यह मज़ा जो टीम-सा चुभता है, यहीं, इसी में पड़कर, शिवा को ज्ञात होता है जैसे जीवन के रस का थोड़ा स्वाद मिल रहा हो । नहीं तो उस खोखले, कृत्रिम, कर्तव्य-बद्ध, राजापन-प्रसिद्धि और प्रभुत्व के जगमगे जर्क-बर्क आवरण पहने, रूखे जीवन से उसे रह-रहकर उकताहट छूटनी है ।

उसे बहुत कुछ स्मरण हो आती है, वह माँ की गोद, जो अब नहीं रह गई है । उसके स्थान पर सिंहासन आ गया है । निर्जीव पत्थर का यह सिंहासन सजीव प्यार के माँ के उस घोंसले की, मानों अपने मद में, खिल्ली उड़ाता है—कम्बख्त सिंहासन से शिवा के प्राण मानों एकबारगी ही चिढ़ उठते हैं । यह सारी प्रसिद्धि, वैभव और मनुष्यता का व्यंग करते दीखते हैं ।

उसे स्मरण हो आता है वह रक्त, जो उसने बहाया है । वे जानें, जो उसने ली हैं । उससे भी अधिक वे जानें, जो उसके लिए गई हैं । जिन्हें उसने मारा है, और जो उसके लिए मर गए हैं,

उनके बिलखते हुए कुटुम्बी और उन कुटुम्बियों के अविरल दुरकते हुए आँसू,—इन सब की कल्पना, स्मृति और चित्र भीतर से उमड़ते हुए और उसके जी को मरोड़ते हुए उठते हैं। उसे ज्ञात होता है, मानों उन सब की हत्याओं और उन दुखियों के दुखों को कुचले हुए खड़ा है उसका राजा-पन !

और स्मरण हो आता है वह हृदय का वेग जो बच्चों को देखकर उमड़ा पड़ता है। वह बाला, जो उसे बचाते-बचाते मर गई, इसलिए कि वह उसे अपना हृदय और अपना सर्वस्व देना चाहती थी। उसने उस हृदयोत्सर्ग के अर्घ्य के अर्पण को स्वीकार किया और उसे कुचल दिया। और वह, जब औरंगजेब के यहाँ गया था, जो अचानक दीख गई थी और मिल गई थी,—जिसका प्रणय, वंश और धर्म, सभ्यता और समाज के सब बन्धनों को लाँघकर उस तक पहुँचता है और इतना कि जिसके रस में वह डूब जाय। वह निसर्ग-शुद्ध प्रणय-रस की धारा उसे याद आती है, जिसे वह छू नहीं सकता !

और सामने दीखते हैं पेड़, जो लताओं को चिपटाये भूम रहे हैं, हँस रहे हैं—‘तुम बड़प्पन की भूख में रहो, इधर हम तुम पर हसते हैं।’ और फिर मानों अपना मुकुट झुकाकर, फुसलाकर, चुप कैसे आवाहन दे जाते हैं—‘व्यर्थता में न पड़ो, आओ, हमारे साथ जीवन में निर्द्वन्द्व खेलो।’ हरी घास, छोटे पौधे, उभरा हुआ पहाड़, भागते खेलते बादल, और उनके पीछे धूप की मुसकान से मुसकाता नीलाकांश, फुदकती चिड़ियाँ और चहकते पत्ती—सब,

मानों अपने जीवन की चुहल दिग्वाते हुए व्यंग कर रहे हैं—
‘यह है जीवन !’

शिवा इस रम को देख रहा है । देख-देखकर, क्योंकि इसे वह चख नहीं सकता, बड़ा भुँभला और कुट्ट रहा है । कैसा बेलाग बेदाम बिखरा पड़ा है यह रम !

उसकी फतहों की सूची उसे निकम्मी जान पड़नी है । सफलताओं की लम्बी तालिका उसके मन को बोध नहीं दे पाती ।

जब उसका मन हार जाता है, स्मृतियाँ दबा लेती हैं, और ऐसी चिन्ताएँ अभिभूत कर लेती है, तब उसके एक-मात्र त्राण समर्थ गुरु रामदास याद पड़ते हैं । वह उनकी शरण गहेगा । अब के इस यश, वैभव, राजत्व, लड़ाई और हिसा के मार्ग से मुक्ति पाने की प्रार्थना करेगा । साधारण बन जाने और प्रेम करने की छुट्टी अब के वह भी गुरु से माँग लेगा । व्यस्तता से वह तङ्ग आ गया है, कहेगा—‘गुरु, बहुत हो गया, अब मुझे छुट्टी दो । अब मैं स्नेह में नहाऊँगा और जीवन में खेलूँगा ।’

मन के इसी ज्वार को ज़रा शांत करने के लिए वह टहलता-टहलता एक शिला पर बैठ गया । संध्या चुपचाप सरकी आ रही थी । मानों अपनी अँधियारी साड़ी में से थोड़ी स्निग्धता और शान्ति भी बिखरती आ रही हो ।

शिवा की गोद में एक टिड्डी आ पड़ी । शिवा उसे देखता रह गया । मानों वह अपनी धुन में है, शिवा की उसे खाक पर्वाह नहीं । मानों किसी नये खेल की टोह में जा रही है ।

युवक ने कहा। क्या कहा, सो शिवा न ममभ्र मका। जो कहा गया था उमका आशय नहीं, उसका म्बर उमने मुना—वही उसने समझा और तब उमने गौर से युवक को देखा।

युवक के सारे गान में एक मिहर्न लहराई, आँखें भपी-सी, और मामूली-सा सिदूरियापन दौड़ गया। शिवा से यह छिपा न रहा, और उसके भीतर एक गुदगुदी भी मच उठी।

‘तुम्हें भाई नहीं कहना चाहता, बहन भी नहीं कहना चाहता। क्या कहूँ?’—शिवा ने हँसकर, कँपकर पूछा।

युवक, जो युवती था, शर्मा गया।

जंगल सूना था, पर शिवा मजबूत था। फिर भी उसकी मजबूती, पिछले विचार-प्रवाह से, मानों पिघल उठी थी। यह हो नहीं सकता था कि वह मजबूती रिसकर बह जाती, तो भी शिवा ने उस पर विश्वास रखना उचित न समझा। पूछा—‘हाँ, क्या चाहती थीं?’

—‘नौकरी।’

‘छिः। नौकरी किया करते हैं कही!’

‘सेना में नौकरी चाहती हूँ।’

‘मारने का काम करोगी? वह काम क्या तुम्हारे बस का है? तुम्हें तो जीने और जिलाने का काम करना चाहिये। क्यों!’

‘हाँ।’

‘सेना में क्यों जाना चाहती हो?’

‘मारने नहीं ।’

‘फिर ?’

‘बचाते-बचाते मरना चाहती हूँ । आपको मारने वाले बहुत हैं ।’

इतने साहस की बात कहने के पश्चात् मानों युवती का साहस चुक गया । शिवा का जी पसीज गया । इस उत्कण्ठित उत्सर्ग की आकांक्षा को देख वह धन्य हुआ । किंतु वह क्या इसके तनिक भी योग्य है ? उसे बस यही अधिकार है कि वह इस उत्सर्ग को ले, और इसी पर अपने शरीर की रक्षा प्राप्त करे । उसे अपनी स्थिति पर आन्तरिक खेद हुआ ।

उसने कहा—‘बाई, यह क्या कहती हो ?—क्या जाने यह नौकरी ही न रहे, सेना ही न रहे । और फिर मेरा शत्रु बनने की भी किसी को आवश्यकता न रहे । जाओ बाई, ऐसा ध्यान न करो । मेरी शपथ, जो ऐसी बात तुमने मन में रक्खी । शिवा का जीना अभी बहुत भारी है । फिर तो उस जीवन को उठाना ही कठिन हो जायगा ।’

युवती शिवा के पैरों में पड़ गई । शिवा ने उसे उठाया, कुछ कदम उसके हाथ पकड़े, उसके साथ गया, और बिदा किया, कहा—‘मेरा मार्ग न बाँध दिया गया होता, तो क्या मैं जान-बूझकर धन्य होने से बचता ? बाई, जाओ शिवा बड़ा अपात्र व्यक्ति है ।’

*

*

*

शिवाजी उमी-शिलाग्रवण्ड पर बैठे थे कि त्र्यम्बक अपने साथियों सहित उपस्थित हुआ ।

‘महाराज !’

‘अरे, त्र्यम्बक !’

‘क्षमा करे, महाराज !’

त्र्यम्बक ने अपनी पूरी कहानी कही । शत्रुओं के साथ मुठभेद की और अपने घावों की बात बहुत संक्षेप में बतलाई । फिर कहा—

‘क्षमा करे, महाराज !’

शिवा ने कहा—‘त्र्यम्बक, मैं वही मार्ग पकड़ना चाहता हूँ, जहाँ क्षमा ही क्षमा है । जहाँ क्षमा माँगने की आवश्यकता ही मिट जाती है । वह छोड़ना चाहता हूँ, जहाँ दण्ड ही दण्ड है । मैं थक गया हूँ । यह नित्य की नई लड़ाई, खोने को रोज नई जाने, और लड़ने को नई जानें, नये अपराध और नये दण्ड—मैं इन सब से घबरा गया हूँ । मैं चाहता हूँ, ये कुछ भी न रहें । हम-तुम भाई बन कर रहें, जैसे कि हम भाई-भाई हैं ।—’

त्र्यम्बक घबराया और बोला—‘महाराज !’

शिवा ने कहा—‘त्र्यम्बक, शिविर में जाओ । बहुत कुछ करना है । पर अच्छा है, यह सब करना-कराना शेष हो जाय । औरंगजेब की सेना इधर बढ़ी आ रही है । उधर कुछ अपने लोग भी चारों ओर से हमें घेरने के प्रयत्न में हैं । इन सब को छकाने

और इनसे बचने को क्या करना होगा, सो सब मैं कर आया हूँ । दक्षिण की ओर एक टुकड़ी भी जायगी । बीजापुर की स्थिति सुनकर कुछ करने की ज़रूरत होगी । वैसे भी, अपनी हालत और वहाँ की हालत को देखते हुए, तुरन्त कुछ कर बैठना ठीक नहीं । जहाँ से सहायता का वचन है, उसकी भी उचित प्रतीक्षा करनी ही चाहिए । इस तरह परसों तक हम यहीं हैं । तब तक कुछ भी आँच यहा तक पहुँच सकेगी—यह असम्भव है । इसलिए मैं आज श्री समर्थगुरु के पास जाता हूँ । परसों प्रातः ही यहाँ पहुँच जाऊंगा । कोई मेरे साथ नहीं जायगा । तुम लोगों को तैयार रहना चाहिए । यदि श्री गुरु ने मेरी प्रार्थना स्वीकार न की, तो परसों १० बजते-बजते सब को पाँच टुकड़ियों में बँटकर यहाँ से कूच कर देना होगा ।’

फिर हृदयाकाक्षा से भीने स्वर में कहा—‘त्र्यम्बक, मैं गुरु के पास छुट्टी माँगने जा रहा हूँ, जिससे इस भ्रमट से हम सब मुक्त हों और प्रकृति के सब्बे प्राणी होकर रहे । यदि इच्छा स्वीकृत हुई, तो तुम्हें सूचना दूँगा,—कोष में जो कुछ है वह सब लोगों में बाँट देना और उन्हें बिदा दे देना । मैं कुछ दिन गुरु के पास ही, और फिर किसी खेड़े में रहूँगा । . ’

त्र्यम्बक ने कहा—‘महाराज !’

शिवा ने कहा—‘जाओ, जैसा कहा वैसा करो ।’

त्र्यम्बक चला गया ।

३

श्री समर्थ गुरु के पास चरणों में ।

‘क्यों, शिवबा, क्या है ?’

‘गुरुवर, बड़े क्लेश में हूँ ।’

‘क्लेश ? कैसा क्लेश ?—क्या फिर उकताहट उठती है ? मैंने तुम्हें बताया, उकताहट का यह स्थान नहीं । कर्म अनिवार्य है और मनुष्य नितात स्वतंत्र नहीं है । कर्म की परिधि में घिरा है । बस परिधि के भीतर स्वतन्त्र है । परिधि से बाहर भागकर वह नहीं जा सकेगा । इसे वह अपना दुर्भाग्य समझे या सौभाग्य,—जगत् का तन्त्र ही ऐसा है ।’

‘भगवन्, कर्म की अनिवार्यता तो मैं स्वीकार करता हूँ । किंतु हँसना-खेलना भी तो कर्म है । प्यार करना भी तो कर्म है । जीवन के विनोद में वह चलना भी तो कर्म ही है । पानी बहता है और खेलता है, चिड़ियाँ उड़ती हैं और चहकती हैं, पेड़ फलते हैं, फूलते हैं और भूमते हैं, सम्पूर्ण जगत् ही मानों आनन्द के सक्रिय समारोह में तन्मय योग देता रहता है । फिर मेरे ही जिम्मे यह लड़ना-मारना क्यों है ? बहुत-सी जीवन की लहरों को बलात् रोककर और अस्वीकार करके एक बनावटी कर्तव्यशासन में बँधे रहना, जगत् के और प्राणियों को छोड़कर, मेरे ही लिये क्यों आवश्यक है ? गुरुवर, मुझे इस निश्चल प्रकृति को देखकर ईर्ष्या होती है, और अपने बंधनों पर बड़ी खीझ होती है ।’

स्वामी रामदास ने स्पष्ट देखा, शिवबा की वितृष्णा सच्ची है, फिर भी मोह-जन्य है। जो सामने सरस दीख पड़ता है, उसीसे ललचाकर, अपने में यह विरागाभास उसने उत्पन्न किया है। वे बोले—‘शिवबा, भूलते हो। जिसको जिस तरह देखते हो, वह वैसा ही नहीं है। जो हँसता दीखता है, क्या मालूम वह उसका रोना हो। इसलिए दूसरों की हँसी पर मत लुभाओ। स्वयं हँसना सीखो, और वह तभी सीख पाओगे, जब जो कुछ होगा उसी पर हँसोगे। दुख पर वैसे ही हँस दोगे, जैसे सुख पर। यह उकता उठना छोड़ दोगे। तुम, सम्भव है, मुझे मुक्त समझो। हाँ, मैं अपने को मुक्त समझता हूँ। पर तुम भी यदि मेरी ही तरह हो जाओ, कौपीन धार लो और संन्यासी बन जाओ, तो आत्मा का असन्तोष ही पाओगे। सब के मार्ग भिन्न भिन्न हैं, यद्यपि सब का अन्त एक है। वह मार्ग किसी के लिए भी मखमल-बिछा नहीं है, वह तो दुर्धर्ष ही है। जो उस मार्ग पर चलना ही नहीं आरंभ करते, उनकी बात छोड़ दो,—वे तो सचमुच उच्छृंखल रहकर जो जी चाहा उसमें भूल रह सकते हैं। पर जो मार्ग पर चलने के अधिकारी हो गए, फिर उन्हें जी चाहा करने का अधिकार नहीं रहता है। उनका तो मार्ग खड्ग की धार की तरह एक-रेखा-रूप, निश्चित और संकरा बन जाता है। तुम्हारा मार्ग राजा का है, मेरा मार्ग साधु का है। हम दोनों की पूर्णता और आत्मोपलब्धि अपने अपने मार्गों में है। राजा संसार का साधारण गृहस्थी नहीं है, वह बड़े दायित्वों से बँधा है। इसलिए उसके कर्तव्य अकर्तव्य की परिभाषा गृहस्थ के पैमाने से नापकर नहीं बनेगी। उसे अधिकार नहीं, कि वह सहज-

प्राप्य अपनी आत्म-सुष्टि ढूँढे, अपने विलास का आयोजन करे। क्योंकि उसे बहुतों के सुखों और जीवनो की रक्षा का भार सौंपा जा चुका है। क्या अपने सुखों को दूसरों की सुविधा के लिए उत्सर्ग कर देने का यह अधिकार प्रत्येक को मिलता है? इसके अधिकारी विरले होते हैं। तो क्या तुम इस अधिकार से विमुक्त होगे? तुम्हे कितना बड़ा उत्सर्ग करना पड़ रहा है, मैं जानता हूँ। जो चीज तुम्हे दुख पहुँचाती है, हिंसा, वही करने पर तुम बाध्य हो। यश, प्रतिष्ठा, जिससे तुम भागना चाहते हो, वे ही तुम्हे चिपटानी पड़ती है। यह महान् उत्सर्ग है, मैं मानता हूँ। कितु मैं समझता हूँ, शिवबा, यह विराट् उत्सर्ग का अवसर—जो तुम जैसे विरलों को ही मिलता है,—तुम खोओगे नहीं।'

शिवा की आत्मा को इन शब्दों से बोध तो हुआ, पर हृदय की व्यथा पूरी न मिट पाई। वह बोला—

—‘महाराज, मैं नहीं जानता, पर जी बेचैन रहता हूँ। करता हूँ, पर अकुलाये मन से....।’ ‘ठहरो’ गुरु ने कहा— ‘समझने में तुम्हें आयास और समय की आवश्यकता होगी। इस बीच मेरा आदेश समझ कर ही मानो। आदेश में शंका न करो—पाप लगता है। जाओ—औरंगज़ेब की सेना बढ़ रही है। ब्राह्मणों का अपमान, धर्म पर अत्याचार और गौत्रों की हत्या हो रही है। भारत की भारतीयता खोई जा रही है। इसकी रक्षा करो!’

शिवा चरणों में पड़ा।—‘भगवन् !’

—‘जाओ, शिववा, कर्म करो। शंका न करो, आकांक्षा न करो। निःशंकित आस्था रखो, निष्काम कर्म करो।’

शिवा पद-धूलि लेकर चला गया।

४

टुकड़ियाँ बँट गई हैं। शिविर उखड़ने को है। सब अपने अपने काम पर कूच करने की तैयारी कर रहे हैं। वही ‘परसों’ आ गया है और वही शिवा जी—लडाई का उत्कट, उद्भट, चपला की तरह चपल शिवाजी,—आ गया है।

तभी त्र्यम्बक का मुकदमा हाथ में लिया। त्र्यम्बक पेश हुआ।

शिवा अब मानों कर्तव्य ही कर्तव्य है। हृदय जो भावना का स्थान है, मानों शिवा ने उसे बिलकुल सुला डाला है। हाँ मस्तिष्क, जो विचार और विवेचना का स्थान है, पूर्ण सजग है। बोला—

‘त्र्यम्बक, तुम्हारा अपराध अक्षम्य है। मेरे निकट क्षमा वैसे भी अक्षम्य है। तुम्हें सब से बड़ा दण्ड जो मैं दे सकता हूँ, देता हूँ। तुम घर जाओ, रहो, तुम से और सेवा मैं नहीं ले सकूँगा।’

सचमुच दण्ड त्र्यम्बक के लिए इससे बड़ा न हो सकता था। वह सब कुछ कर सकेगा, पर शिवा को छोड़ना।—यह कैसे होगा? मौत मंजूर होती, पर यह तो उस स्वामिभक्त के लिए बिलकुल असह्य ही है।

उराने बहुत विक्षनी की । पर शिवा की बान शिवा की बान है, झुकेगी नहीं ।

* * * *

वह,—वही युवक भी हाजिर हुआ । शिवा की आँखों में सरसता की भाँई भी नहीं है । केवल एक वस्तु है,—प्रभुत्व ।

‘नौकरी चाहते हो ?’

‘जी ।’

‘अच्छा ।’

फ़ौजदार को इस नये सिपाही को बाकायदा शपथ-पूर्वक भर्ती कर लेने का हुक्म हुआ ।

* * * *

लडाई हुई । धावा अचानक का था । शिवा का बचना असम्भव था,—पर भाग्य कहिए, बच गया । भाग्य को श्रेय देते हुए शर्म आती है । किंतु एक छोटे से अनजाने सिपाही को श्रेय देने का कायदा इतिहास का नहीं है । कोई उत्सुक पूछे ही, तो इतना बता सकते हैं कि एक तलवार का भरपूर हाथ जो ठीक शिवा जी की गर्दन पर पड़ता, और पड़ता तो कभी अकारण न जाता, एक नये युवक सिपाही की पीठ पर पड़ा ! वह सिपाही फिर ज्यादा देर तक जीता न रहा और उसके साथी भी भली प्रकार उसके गाँव-पते का पूरा पता न चला सके । क्योंकि शिवा ने तुरंत

लाश अपने खास शिविर मे मँगा ली थी, और फिर कोई बाहरी आँख उस पर न पड़ सकी थी ।

शिवा ने उस लाश को क्या किया ? उसे आँसुओं से तो भिगोया ही,—फिर क्या किया, नहीं कहा जा सकता ।

श्री चतुरसेन शास्त्री

जीवन-परिचय

शास्त्री जी का जन्म संवत् १९४८ में हुआ । आप दिल्ली के प्रसिद्ध वैद्य हैं और संजीवन औपधालय के स्वामी हैं ।

‘हृदय की प्यास’ ‘हृदय की परख’ और ‘अमर अभिलाषा’ नाम के आपने तीन उपन्यास लिखे हैं और आपकी कहानियाँ ‘अक्षत’ और ‘रजकण’ के रूप में प्रकाशित हुई हैं ।

आपकी शैली अनूठी है । लिखते समय आप पाठकों के साथ आत्मीयता का ऐसा व्यापक संबंध जोड़ते हैं कि पाठक इनकी रचनाओं में स्वयं इन्हे अपनी आँखों के सामने खड़ा देखते हैं । यही कारण है कि आपकी रचनाएँ इतनी व्यावहारिक, विशद, सरल तथा मर्मस्पर्शी संपन्न हुई हैं ।

भाषा आपकी श्री प्रेमचंद की सी चलती है । उसमें उर्दू की पुष्ट मिली रहती है । देहली के स्थानीय मुहावरो की खपत भी अच्छी है । वाक्य विधान सुसंघटित तथा देशकालानुसारी है ।

आपकी रचनाओं का विषय अधिकतर शृंगार है ! इसके मनोहर चित्रण में आपकी कला ने कमाव किया है ।

भिक्षुराज

मसीह के जन्म से २५० वर्ष प्रथम । ग्रीष्म की ऋतु थी और संध्या का समय, जब कि एक तरणी कांबोज के समुद्र-तट से दक्षिण दिशा की ओर धीरे-धीरे अनंत सागर के गर्भ में प्रविष्ट हो रही थी ।

इस लुद्रा तरणी के द्वारा अनंत समुद्र की यात्रा करना भयंकर दुःसाहस था । वह तरणी हल्के, किंतु दृढ़ काष्ठफलकों को चर्म-रज्जु से बाँधकर और बीच में बाँस का बंध देकर बनाई गई थी, और ऊपर चर्म मढ़ दिया गया था । वह बहुत छोटी और हल्की थी, पानी पर अधर तैर रही थी, और पत्नी की तरह समुद्र की तरंगों पर तीव्र गति से उड़ी चली जा रही थी । तरणी में एक ओर कुछ खाद्य पदार्थ मृद्भांडों में धरे थे, जिनका मुख वस्त्र से बँधा हुआ था । निकट ही बड़े-बड़े पिटारों में भूर्ज-पत्र पर लिखित ग्रंथ भरे हुए थे ।

तरणी के बीचोंबीच बारह मनुष्य बैठे थे। प्रत्येक के हाथ में एक-एक पतवार थी, और वह उसे प्रबल वायु के प्रवाह के विपरीत दृढ़ता से पकड़े हुए था। उनके वस्त्र पीतवर्ण थे, और सिर मुंडित—प्रत्येक के आगे एक भिक्षा-पात्र धरा था। उनके पैरों में काष्ठ की पादुकाएँ थी।

तेरहवाँ एक और व्यक्ति था। उसका परिच्छद भी साथियों जैसा ही था। किंतु उसकी मुख-मुद्रा, अंतस्तेज और उज्ज्वल दृष्टि उसमें उसके साथियों से विशेषता उत्पन्न कर रही थी। उसकी दृष्टि में एक अद्भुत कोमलता थी, जो प्रायः पुरुषों में, विशेषकर युवकों में नहीं पाई जाती। उसके मुख की गठन साफ और सुंदर थी। उसके मुख पर दया, उदारता और विचारशीलता टपक रही थी।

वह सब से जरा हटकर, पीछे की तरफ, बैठा हुआ और उसका एक हाथ नाव की एक रस्सी पर था। उसकी दृष्टि सागर की चमकीली, तरंगित जल-राशि पर न थी। वह दृष्टि से परे किसी विशेष गंभीर और विवेचनीय दृश्य को देख रहा था। उसका मुख समुद्र-तीर की उन हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों की ओर था, और उनके बीच में छिपते सूर्य को वह मानों स्थिर होकर देख रहा था। उसकी ठुड्डी उसके कंधे पर धरी थी। कभी कभी उसके हृदय से लंबी श्वास निकलती और उसके होठ फड़क जाते थे।

इसके निकट ही एक और मूर्ति चुपचाप पाषाण-प्रतिमा की भाँति बैठी थी, जिस पर एकाएक दृष्टि ही नहीं पड़ती थी। उसके वस्त्र भी पूर्व-वर्णित पुरुषों के समान थे। परंतु उसका रंग

नवीन केले के पत्ते के समान था। उसके सिर पर एक पीत वस्त्र बँधा था, पर उसके बीच से उसके घुँघराले और चमकीले काले बाल चमक रहे थे। उसके नेत्र शुक्र नक्षत्र की भाँति स्वच्छ और चंचल थे। उसका अरुण अधर और अर्निच सुंदर मुख-मंडल सुधावर्षी चंद्र की स्पर्धा कर रहा था। वास्तव में वह पुरुष नहीं, बालिका थी। वह पीछे की ओर दृष्टि किये उन क्षण क्षण में दूर होती उपत्यका और पर्वत-श्रेणियों को करुण और डबडबाई आँखों से देख रही थी, मानों वह उन चिर-परिचित स्थलों को सदैव के लिए त्याग रही हो, मानों उन पर्वतों के निकट उसका घर था, जहाँ वह बड़ी हुई थी, खेती थी। वह वहाँ से कभी पृथक् न हुई थी, और आज जा रही थी उस सुदूर अज्ञात देश को, जहाँ से लौटने की उसे आशा ही न थी।

यह युवक और युवती ससागरा पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट् मगधपति प्रियदर्शी अशोक के पुत्र महाभट्टारकपादीय महाकुमार महेन्द्र और महाराज-कुमारी संघमित्रा थे, और उनके साथी बौद्ध-भिन्नु। ये दोनों धर्मात्मा, त्यागी, राजसंतति-आचार्य उपगुप्त की इच्छा से सुदूर सागरवर्ती सिंहलद्वीप में भिन्नवृत्ति ग्रहण कर बौद्ध-धर्म का प्रचार करने जा रहे थे। महाराज-कुमारी के दक्षिण हाथ में बोधि-वृक्ष की टहनी थी।

आकाश का प्रकाश और रंग धुल गया, और धीरे-धीरे अंधकार ने चारों ओर से पृथ्वी को घेर लिया। बारहों मनुष्य नीरव अपना काम मुस्तैदी से कर रहे थे। क्वचित् ही कोई शब्द

उनके मुख से निकलता हो; कदाचित् वे भी अपने स्वामी की भाँति भविष्य की चिन्ता में मग्न थे। इसके सिवा उस अचल एकनिष्ठ व्यक्ति के साथ बातचीत करना सरल न था।

अंततः पीछे का भू-भाग शीघ्र ही गंभीर अंधकार में छिप गया। कुमारी संघमित्रा ने एक लंबी साँस खींचकर उधर से आँखे फेर लीं। एक बार बहन-भाई दोनों की दृष्टि मिली। इसके बाद महाकुमार ने उसकी ओर से दृष्टि फेर ली।

एक व्यक्ति ने विनम्र स्वर में कहा—‘स्वामिन् ! क्या आप बहुत ही शोकातुर हैं ?’ दूसरा व्यक्ति बीच ही में बोल उठा—

‘क्यों नहीं, हम अपने पीछे जिन वनस्थली और दृश्यों को छोड़ आए हैं, अब उन्हें फिर देखने की इस जीवन में क्या आशा है ? और अब, जिन मनुष्यों से मिलने को हम जा रहे हैं, उनका हमें कुछ भी परिचय नहीं है। उनमें कौन हमारा सगा है ? केवल अंतरात्मा की एक बलवती आवाज़ से प्रेरित होकर हम वहाँ जा रहे हैं। आचार्य की आज्ञा के विरुद्ध हमें कौन निषेध कर सकता था !’

एक और व्यक्ति बोल उठा, उसकी आँखें चमकीली और चेहरा भरा हुआ एवं सुंदर था। उसने कहा—‘जब तुम इस प्रकार खिन्न हो, तब वहाँ चल ही क्यों रहे हो ? अब भी लौटने का समय है।’ वह मुस्कराया। महाकुमार महेंद्र ने मुस्कराकर मधुर स्वर से कहा—‘भाइयो ! जब मैंने इस यात्रा का संकल्प किया था, तब तुमने क्यों मेरे साथ चलने और भले-बुरे में साथ देने का इतना

हठ किया था । ऐसी क्या आपत्ति थी ?' एक ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—'स्वामिन् ! हम आपको प्यार करते थे ।'

दूसरे ने मन्द हास्य से कहा—'वाह ! यह खूब उत्तर दिया । मैं स्वामी को प्यार करता हूँ, इसलिये उसकी जो आज्ञा होगी, वह मानूँगा—जहाँ वह लिवा जायगा, वहाँ जाऊँगा ।' फिर उसने गंभीरता-पूर्वक कहा—'और मैं समझता हूँ कि मैं उन अपरिचित मनुष्यों को भी प्यार करता हूँ, जो इस असीम समुद्र के उस पार रहते हैं ।'

यह कहकर उसने उस अंधकारावृत दक्षिण दिशा की ओर उँगली उठाई, जहाँ शून्य भय के सिवा कुछ दीखता न था । उसने फिर कहा—'जो आत्मा के गहन विषयों से अनभिज्ञ है, जो तथागत के सिद्धांतों को नहीं जान पाए है, जो दुःख में मग्न अबोध संसारी हैं, उन्हें मैं प्यार करता हूँ । तथागत की आज्ञा है कि उन पर अगाध करुणा करनी चाहिए । मेरा हृदय उनके प्रेम से ओत-प्रोत है । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे हमें बुला रहे हैं, चिरकाल से बुला रहे हैं । आह ! उन्हें हमारी अत्यंत आवश्यकता है । वे भवसागर में डूब रहे हैं, क्योंकि तथागत की ज्ञान-गरिमा से वे अपरिचित हैं । हम उन्हें अक्षय प्रकाश दिखाने जा रहे हैं । निस्संदेह हमें कठिनाइयों और आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा । हमारे पास रक्षा की कोई सामग्री नहीं और शस्त्र भी नहीं । फिर भी अहिंसा का महा अस्त्र तो हमारे हाथ है, जो अंत में सब से अधिक शक्तिशाली है ।'

यह धीमी और गंभीर आवाज उस अंधकार को भेदन करके सब साथियों के कानों में पड़ी, मानों सुंदर पर्वत-श्रेणियों से टकराकर हठात् उनके कानों में घुम गई हो। बारहों मनुष्यों में सन्नाटा छा गया, और सब ने सिर झुका लिए। इन शब्दों की चमत्कारिणी, मोहनी शक्ति से सभी मोहित हो गए।

दो घंटे व्यतीत हो गए। तरणी जल-तरंगों से आदोलित होती हुई उड़ी चली जा रही थी। राजनंदिनी ने मौन भंग किया। कहा—‘भाई, क्या मैं अकेली उस द्वीप की समस्त स्त्रियों को श्रेष्ठ धर्म सिखा सकूँगी ?’

महाराजकुमार ने मृदुल स्वर में कहा—‘आर्या संघमित्रा ! यहाँ तुम्हारा भाई कौन है ? क्या तथागत ने नहीं कहा है कि सभी सद्धर्मी भिक्षु-मात्र हैं।’

‘फिर भी महाभट्टारकपादीय महाराजकुमार.....।’

‘भिक्षु न कही का महाराज है, और न महाराजकुमार।’

‘अच्छा भिक्षु-श्रेष्ठ ! क्या मैं वहाँ की स्त्रियों के उद्धार में अकेली समर्थ होऊँगी ?’

‘क्या तथागत अकेले न थे ?’ उन्होंने जंबू-महाद्वीप में कैसी क्रांति उत्पन्न कर दी है।

‘किंतु भिक्षुवर ! मैं अबला स्त्री.....’

‘तथागत की श्रोत-प्रोत आत्मा का क्या तुम्हारे हृदय में बल नहीं ?’

संघमित्रा ध्यान-मग्न हो गई ।

एक मनुष्य बीच ही में बोल उठा—'क्या हम लोग तीर के निकट आ गए हैं ? समुद्र की लहरे चट्टानों से टकरा रही हैं ।'

महाकुमार ने चितित स्वर में कहा—'अवश्य ही हम मार्ग भटक गए हैं, और निकट ही कोई जल-गर्भस्थ चट्टान है । आप लोग सावधानी से तरणी का संचालन करे ।' इतना कहकर उसने एक दृष्टि चारों ओर डाली ।

क्षण-भर में ही तरणी चट्टान से जा टकराई । कुमारी संघमित्रा अंधे मुँह गिर पड़ी, और समस्त सामग्री अस्त-व्यस्त हो गई । कुमार ने देखा, चट्टान जल से ऊपर है । वह उस पर कूद पड़े । खड़े होकर उन्होंने अनंत जल-राशि को चारों ओर देखा । इसके बाद उन्होंने साथियों से, संकेत करके, नीचे बुलाकर, कहा—'हमें यहीं रात काटनी होगी । प्रातःकाल क्या होता है, यह देखा जायगा ।' सब ने वही फलाहार किया, और उस ऊबड़-खाबड़, उजाड़ और सुनसान, क्षुद्र चट्टान पर वे चौदह व्यक्ति बिना किसी छॉह के अपनी अपनी बाहों का तकिया लगाकर सो रहे ।

२

प्रातःकाल सूर्य की सुनहरी किरणें फैल रही थीं । समुद्र की उज्ज्वल फेन-राशि पर उनकी प्रभा एक अनिर्वचनीय सौंदर्य की सृष्टि कर रही थी । समुद्र शांत था, और जलचर जंतु जहाँ-तहाँ सिर निकाले, निश्शंक, स्वच्छ वायु में, श्वास ले रहे

थे। कुछ दूर छोटे-छोटे पक्षी मंद कलरव करते उड़ रहे थे, वे नेत्र और कर्ण दोनों ही को सुखद थे।

महाकुमारी आर्या संघमित्रा चट्टान पर चढ़कर, सुदूर पूर्व दिशा में आँख गाड़कर, कुछ देव रही थी। महाराजकुमार ने उसके निकट पहुँचकर कहा—‘आर्या संघमित्रा, क्या देख रही हो?’

संघमित्रा के होठ कंपित हुए। उसने संयत होकर, विनम्र और मृदु स्वर में, कहा—‘भिक्षुवर! जिस पृथ्वी को हमने छोड़ा है, वह यही सम्मुख तो है। पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो युग व्यतीत हो गया, और माता पृथ्वी के दूसरे छोर पर हम आ गए। सोचिए, अभी हमें और भी आगे, अज्ञात प्रदेश को जाना है। क्या वहाँ हम ठहरकर सद्धर्म-प्रचार कर सकेंगे? देखो, प्रियजनों की दृष्टियाँ हमें बुला रही हैं, यह मैं स्पष्ट देख रही हूँ।’ उसने अपना हाथ दूरस्थ पहाड़ियों की धुंधली छाया की तरफ फैला दिया, जहाँ पृथ्वी और आकाश मिलते देख रहे थे। इसके बाद उसने महाकुमार की ओर मुड़कर कहा—‘भाई, नहीं नहीं, भिक्षुराज! चलो लौट चलो। घर लौट चलो। सद्धर्म-प्रचार का अभी वहाँ बहुत क्षेत्र है।’

महाकुमार ने कुमारी के और भी निकट आकर उसके सिर पर अपना शुभ हस्त रक्खा, और मंद-मंद स्वर से गंभीर मुद्रा में कहा—‘शातं पापम्, आर्या संघमित्रा! शातं पापम्।’ महाकुमारी वही बैठकर नीचे दृष्टि किए रोने लगी।

कुमार की वाणी गद्गद हो गई थी। उसने कहा—‘आर्या ! हमने जिस महाव्रत की दीक्षा ली है, उसे प्राण रहते पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। सोचो, हम असाधारण व्यक्ति हैं। हमारे पिता चक्रवर्ती सम्राट् हैं। मैं इस महाराज्य का उत्तराधिकारी हूँ। मैं जहाँ भिक्षाटन करने जा रहा हूँ, कदाचित् उसका राजा करद होकर मेरे पास भेंट लेकर आता। परंतु मैं उस प्रदेश की गली गली में एक एक प्रास अन्न माँगूँगा, और बदले में सद्व्रम का पवित्र रत्न उन्हे दूँगा। क्या यह मेरे लिए और तुम्हारे लिए भी आर्या संघमित्रा, अलभ्य कीर्ति और सौभाग्य की बात नहीं ? क्या तथागत प्रभु को छोड़कर और भी किसी सद्व्रमी ने ऐसा किया था ? प्रभु की स्पर्धा करने का सौभाग्य तो भूत और भविष्य में, आर्या संघमित्रा, हमी दोनों जीवों को प्राप्त होगा; तुम्हे मुझ से भी अधिक, क्योंकि सम्राट् की कन्या होकर भिक्षुणी होना स्त्री-जाति में तुम्हारी समता नहीं रखता। आर्या ! इस सौभाग्य की अपेक्षा क्या राजवैभव अधिक प्रिय है। सोचो ! यह अधम शरीर और अनित्य जीवन जगत् के असंख्य प्राणियों का किस प्रकार नष्ट हो रहा है। परंतु हमें उसकी महाप्रतिष्ठा करने का कैसा सुयोग मिला है, कदाचित् भविष्य काल में, सहस्रों वर्षों तक, हम लोगों की स्मृति श्रद्धा और सम्मान-सहित जीवित रहेगी।’

इतना कहकर महाकुमार मौन हो गए। कुमारी धीरे-धीरे उनके चरणों में झुक गई। उसने अपराधिनी शिष्या की भाँति प्रथम बार सहोदर भाई से मानो भ्रातृ-संबंध त्याग कर अपनी मानसिक

दुर्बलता के लिए कङ्क-बद्ध हो क्षमा-याचना की, और महाकुमार ने कर्मठ भिक्षु की भाँति उसका सिर स्पर्श करके कहा—‘कल्याण !’

इसके बाद ही नौका तैयार हुई, और वह फिर लहरों की ताल पर नाचने लगी। बागहों साथी निस्त्रब्ध हो समुद्र की उचुग तरंगों में मानों उस क्षुद्र तरंगी को घुसाए लिए जा रहे थे। एक दिन और एक रात्रि की अविरल यात्रा के बाद समुद्र-तट दिग्वाई दिया। उस समय धीरे-धीरे सूर्य डूब रहा था, और उसका रक्त बिंब जल में आंदोलित हो रहा था। महाकुमारी ने सूर्य की ओर देखा, और मन ही मन कहा—‘सूर्यदेव ! अभी उस चिर-परिचित प्रभात में मैं एक अविकसित अरविद-कली थी। तुम्हारी स्वर्ण-किरण के सुखद स्पर्श से पुलकित होकर ग्विल पड़ी। मैं अपनी समस्त पँखुडियों से खिलकर दिन-भर निर्लज्ज की भाँति तुम्हें देखती रही। हाय ! किंतु तुम कितनी उपेक्षा से जा रहे हो ! जाते हो तो जाओ, मैं अपना समस्त सौगभ तुम्हारे चरणों में लुटा चुकी हूँ। अब सूखकर रज-कण में मिल जाना ही मेरी चरम गति है।’

उसने अति अप्रकट भाव से अस्तंगत सूर्य को प्रणाम किया, और टप से एक बूँद आँसू उसकी गोद में रक्खे बोधि-वृक्ष पर टपक पड़ी।

तट आ गया, और महाकुमार गंभीर मुद्रा से उस पर कूद गए। उसके बाद उन्होंने मुस्कराते हुए महाकुमारी को संकेत करके कहा—‘आर्या संघमित्रा ! आओ, हम अभीष्ट स्थान पर पहुँच गए। इस क्षण से यह तट निर्वाण-तट के नाम से पुकारा जाय।’

सब ने चुपचाप सिर झुका लिया। तबहों आत्माएँ, एक के बाद दूसरी, उस अपरिचित किनारे पर सदैव के लिये उतर पडीं, और प्रार्थना के लिये रेत में घुटनों के बल धरती में झुक गईं।

३

वह राजवंशीय भिल्लु उस स्थान पर समुद्र-तट से और थोड़ा आगे बढ़कर ठहर गया। उसके तेरहों साथी उसके अनुयायी थे। उन्होंने उस बोधि-वृक्ष की वहाँ स्थापना की। पत्थर और गाग इकट्ठा करके उन्होंने विहार बनाना आरंभ किया। धीरे-धीरे भवन बनने लगे, और आस-पास की अर्धमभ्य जातियों में उसकी ख्याति होने लगी। झुंड के झुंड स्त्री-पुरुष इस सुंदर, सभ्य, विनम्र तपस्वी के दर्शन करने को, उसका धर्म-संदेश और प्रेममय भाषण सुनने को आने लगे। इस पुरुष-रत्न के सतेज स्वर, बलिष्ठ शरीर, निरालस्य स्वभाव, आनंदमय और संतोष-पूर्णा जीवन और दयालु प्रकृति ने उन सहस्रों अपरिचितों के हृदयों को जीत लिया। वे उसे प्राणों से अधिक प्यार करने लगे। उसके प्रभावशाली भाषण में वे महाप्रभु बुद्ध की आत्मा को प्रत्यक्ष देखने लगे। उनके पुराने अंध विश्वास—उपासनाएँ—कुरीतियाँ इतनी शीघ्रता से दूर हो गईं, और वे अपने इस प्यारे गुरु के इतने पक्के अनुगामी हो गए कि थोड़े ही दिनों में प्रांत-भर में इस बात की चर्चा हो गई, और शीघ्र ही वह स्थान टापू-भर में विख्यात हो गया, और वहाँ नित्य मेला रहने लगा।

धीरे धीरे वह वन्य प्रदेश विशाल अट्टालिकाओं में परिपूर्ण हो गया। अब वह एक बड़ा विहार था, और उसमें केवल वही

चौदह भिक्षु न थे, किंतु सैकड़ों भिक्षु-भिक्षुणियाँ थीं, जो जगत् के सभी स्वार्थों और सुखों को त्याग कर पवित्र और त्याग-पुर्ण जीवन व्यतीत करने में रत थीं।

समुद्र की लहरें किनारों पर टकराकर उनके परिजनों की आनंद-ध्वनि की प्रतिध्वनि करती थी, और उन महात्मा राजपुत्र और राजपुत्री एवं उनके साहसी साथियों को उत्साह दिलानी थीं, और अब उनके मन में कोई खेद न था। वे सब अति प्रफुल्लित हो अपने कर्तव्य का पालन कर रहे थे।

४

भिक्षुराज ध्यानावस्थित बैठे कुछ विचार कर रहे थे। आर्या संघमित्रा बोधि-वृक्ष को सींच रही थीं। एक भिक्षु ने बढ़ाजलि होकर कहा—‘स्वामिन, सिंघलद्वीप के स्वामी महाराजा निष्य ने आपको राजधानी अनुराधापुर ले जाने के लिए राजकीय रथ और वाहन तथा कुछ भेंट भेजी है, स्वामी की क्या आज्ञा है?’

युवक भिक्षुराज ने बाहर आकर देखा, सौ हाथी, सौ रथ और दो सहस्र पदातिक एवं बहुत से भिन्न-भिन्न यान हैं। साथ में राजकीय छत्र-चक्र भी हैं। महानायक ने सम्मुख आ, नत-जानु हो प्रणाम कर कहा—‘प्रभु, प्रसन्न हों। महाराजा की विनय है कि पवित्र स्वामी अनुचरों-सहित राजभवन को सुशोभित करें, वाहन सेवा में उपस्थित हैं। कुछ तुच्छ भेंट भी है।’

यह कहकर महानायक ने संकेत किया—तत्काल सौ दास

विविध सामग्री से भरे स्वर्ण-थाल ले, सम्मुख रखकर पीछे हट गए। उनमें बड़े बड़े मोतियों की मालाएँ, रत्नाभरणा, रेशमी बहुमूल्य वस्त्र, सुन्दर शिल्प की वस्तुएँ, बहुमूल्य मदिराएँ और विविध सामग्री थी। महाकुमार ने देखा, एक क्षीण हास्य-रेखा उनके ओठों पर दौड़ गई, और उन्होंने महानायक की ओर देखकर गंभीर वाणी से कहा—‘महानायक, भिन्नराजों के भिन्न-पात्र मे यह राजसामग्री कहाँ समावेगी, मेरे जैसे भिन्नराजों को इसकी आवश्यकता ही क्या? इन्हें लौटा ले जाओ। महाराजा तिष्य से कहना, हम स्वयं राजधानी में आते हैं।’

भिन्नराज ने यह कहा, और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही अपने आसन पर आ बैठे। राज्यवर्ग अपनी तमाम सामग्री ले वापस लौट गया।

राजधानी वहाँ से दूर थी, और यात्रा की कोई भी सुविधा न थी, परंतु उस टापू के राजा तिष्य को सद्धर्म का संदेश सुनाना परमावश्यक था। यदि ऐसा हो जाय, तो टापू-भर में बौद्ध-सिद्धांतों का प्रचार हो जाय।

महाकुमार ने तैयारी की। कुमारी और बारहों साथी तैयार हो गए, और वह दुर्गम यात्रा प्रारंभ हुई। प्रत्येक के कंधे पर उसकी आवश्यक सामग्री और हाथ में भिन्न-पात्र था। वे चलते ही चले गए। पर्वतों की चोटियों पर चढ़े। घने, हिंस्र जंतुओं से परिपूर्ण वन में घुसे। वृक्ष और जल से रहित रेगिस्तान में होकर गुजरे। अनेक भयंकर गार और ऊबड़-खाबड़ जंगल, पेचीली

जंगली नदियाँ उन्हे पार करनी पड़ी। अंत में राजधानी निकट आई।

राजा अंध-विश्वासों से परिपूर्ण वातावरण में था। सैकड़ों जादूगर, मूर्ख, पाखंडी उमे घेरे रहते थे। उन्होंने उमे भयभीत कर दिया कि यदि वह उन भिक्षु-यात्रियों से मिलेगा, तो उम पर दैवी कोप होगा, और वह तत्काल मर जायगा। परंतु उसने सुन रक्खा था कि आगंतुक, चक्रवर्ती सम्राट् अशोक के पुत्र और पुत्री हैं। उसमें सम्राट् को अप्रसन्न करने की सामर्थ्य न थी। उसने उनके स्वागत का बहुत अधिक आयोजन किया। उसे विचार था, महाराजकुमार के साथ बहुत-सी सेना-सामग्री, सवारी आदि होंगी। पर जब उसने उन्हे पीत वस्त्र पहने, पृथ्वी पर दृष्टि दिए, नंगे पैरों धीरे-धीरे पैदल अप्रसर होते और महाराजकुमारी तथा अन्य अनुचरों को उसी भाँति अनुगत होते देखा, तब वह आश्चर्य-चकित रह गया, और जब उसने सुना कि उसकी समस्त भेट और सवारी उन्होंने लौटा दी है, और वे इसी भाँति पैदल भयानक यात्रा करके आए हैं, तब वह विमूढ हो गया। कुमार पर उसकी भक्ति बढ़ गई। उसने देखा, राजकुमार के सिर पर मुकुट और कानों में कुंडल न थे, पर मुख कांति से देदीप्यमान हो रहा था। उन्होंने हाथ उठाकर राजा को 'कल्याण' का आशीर्वाद दिया। राजा हठात् उठकर महाकुमार के चरणों में गिर गया। समस्त दरबार के संभ्रांत पुरुष भी भूमि पर लोटने लगे।

महाकुमार ने प्रबोध देना प्रारंभ किया, और कहा—

‘राजन्, ज़मा हमारा शस्त्र और दबा हमारी सेना है । हम इसी राजबल से पृथ्वी की शक्तियों को विजय करते हैं । हम सद्धर्म का प्रकाश जीवों के हृदयों में प्रज्वलित करते फिरते हैं । हम त्याग, तप, दया और सद्भावना से आत्मा का शृंगार करते हैं । हे राजन् ! हम अपनी ये सब विभूतियाँ आपको देने आए हैं, आप इन्हे ग्रहण करके कृतकृत्य हूजिए ।’

राजा धीरे-धीरे पृथ्वी से उठा । उसने कहा—‘और केवल यह विभूतियाँ ही आपके इस प्रशस्त जीवन का कारण हैं ?’

राजकुमार ने स्थिर-गंभीर होकर कहा—‘हाँ ।’

‘इन्हीं को पाकर आपने साम्राज्य का दुर्लभ अधिकार तुच्छ समझकर त्याग दिया ?’

‘हाँ, राजन् ।’

‘और इन्हीं को पाकर आप भिक्षा-वृत्ति में सुखी हैं, पैदल यात्रा के कष्टों को सहन करते हैं, तपस्वी जीवन से शरीर को कष्ट देने पर भी प्रफुल्लित हैं ।’

‘हाँ, इन्हीं को पाकर ।’

‘हे स्वामी ! वे महाविभूतियाँ मुझे दीजिए, मैं आपका शरणागत हूँ ।’

भिक्षुराज ने एक पद आगे बढ़कर कहा—‘राजन्, सावधान होकर बैठो ।’

राजा घुटनों के बल धरती पर बैठ गया। उसका मस्तक युवक भिक्षुराज के चरणों में झुक रहा था।

महाकुमार ने कमंडलु में पवित्र जल निकालकर राजा के स्वर्गा-खचित राजमुकुट पर छिड़क दिया, और कहा—

‘कहो —’

‘बुद्धं शरणां गच्छामि ।’

‘संघं शरणां गच्छामि ।’

‘सत्यं शरणां गच्छामि ।’

राजा ने अनुकरण किया। तब भिक्षुराज ने अपना शुभ हस्त राजा के मस्तक पर रखकर कहा—‘राजन, उठो। तुम्हारा कल्याण हो गया। तुम प्रियदर्शी सम्राट् के प्यारे सद्धर्मी और तथागत के अनुगामी हुए।’

इसके बाद राजा की ओर देगे बिना ही भिक्षु-श्रेष्ठ अपने निवास को लौट गए।

५

उनके लिए राजमहल में एक विशाल भवन निर्माण कराया, और उसमें श्वेत चँदोवा ताना गया था, जो पुष्पों से सजाया गया था। महाकुमार ने वहाँ बैठकर अपने साथियों के साथ भोजन किया, और तीन बार राजपरिवार को उपदेश दिया। उसी समय तिष्य के लघु भ्राता की पत्नी अनुला ने अपनी पाँच सौ सखियों के साथ सद्धर्म ग्रहण किया।

संध्या का समय हुआ, और भिन्नुराज-मडली पर्वत की ओर जाने को उद्यत हुई। महाराजा तिष्य ने आकर विनीत भाव से कहा—‘पर्वत बहुत दूर है, और अति विलंब हो गया है, सूर्य छिप रहा है, अतः आप कृपा कर नंदन-उपवन में ही विश्राम करें।’

महाकुमार ने उत्तर दिया—‘राजन, नगर में और उसके निकट वास करना भिन्नुराज का धर्म नहीं।’

‘तब प्रभु महामेघ-उपवन में विश्राम करें, वह राजधानी से न बहुत दूर है, न निकट ही।’

महाकुमार सहमत हुए, और महामेघ-उपवन में उनका आसन जमा।

दूसरे दिन तिष्य पुष्प-भेट लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। महाकुमार ने स्थान के प्रति संतोष प्रकट किया। तिष्य ने प्रार्थना की कि वह उपवन भिन्नुराज-संघ की भेट समझा जाय और वहाँ विहार की स्थापना की जाय।

भिन्नुराज ने महाराजा तिष्य की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। महामेघ-अनुष्ठान के तेरहवें दिन, आषाढ शुक्ला त्रयोदशी को, महाकुमार महेन्द्र, राजा का फिर आतिथ्य ग्रहण करके, अनुराधापुर के पूर्वी द्वार से मिस्सक-पर्वत को लौट चले। महाराजा ने यह सुना, तो वह राजकुमारी अनुला और सिंहालियों को साथ लेकर, रथ पर बैठकर, चले।

महेन्द्र और भिन्नुराज तालाब में स्नान करके पर्वत पर चढ़ने

को उद्यत खड़े थे । राजवर्ग को देवकर महाकुमार ने कहा—‘राजन्, इस असह्य प्रीप्सु मे तुमने क्यों कष्ट किया ?’

‘स्वामिन, आपका वियोग हमे सह्य नहीं ।’

‘अधीर होने का काम नहीं । हम लोग वर्षा-ऋतु मे वर्ष-अनुष्ठान के लिए यहाँ पर्वत पर आए हैं, और वर्षा-ऋतु यही पर व्यतीत करेगे ।’

महाराजा तिष्य ने तत्काल कर्मचारियों को लगाकर ६८ गुफाएँ वहाँ निर्माण करा दी, और भिक्षुगण वहाँ चतुर्मास व्यतीत करने को ठहर गए । एक दिन तिष्य ने कहा —

‘स्वामिन्, यह बड़े खेद का विषय है कि लंका मे भगवान् बुद्ध का ऐसा कोई स्मारक नहीं, जहाँ उसकी, भेट-पूजा चढाकर विधिवत् अर्चना की जाय । यदि प्रभु स्मारक के योग्य कोई वस्तु प्राप्त कर सके, तो उसकी प्रतिष्ठा करके उस पर स्तूप बनवा दिया जाय ।’

महाकुमार महेन्द्र ने विचार कर ‘सुमन’ भिक्षु को लंका-नरेश का यह संदेश लेकर सम्राट् प्रियदर्शी अशोक की सेवा मे भारतवर्ष भेज दिया ।

उसने सम्राट् से महाकुमार और महाकुमारी के पवित्र जीवन का उल्लेख करके कहा—‘चक्रवर्ती की जय हो । महाकुमार और लंका-नरेश की इच्छा है कि लंका मे तथागत के शरीर का कुछ अंश प्रतिष्ठित किया जाय, और उसकी पूजा होती रहे ।’

अशोक ने महाबुद्ध के गले की एक अस्थि का टुकड़ा उसे देकर विदा किया ।

महाकुमार उस अस्थि-खंड को लेकर फिर महामेघ-उपवन में आए । वहाँ राजा अपने राजकीय हाथी पर छत्र लगाए स्वागत के लिए उपस्थित था ।

राजाने अस्थि-खंड को सिर पर धारण किया, और बड़ी धूम-धाम से उसकी स्थापना की । उस अवसर पर तीस सहस्र सिंहालियों ने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया ।

६

द्वीप-भर में बौद्ध-धर्म का साम्राज्य था । सम्राट् ने अपने पवित्र पुत्र और पुत्री को तीन सौ पिटारे भरकर धर्म-ग्रंथ उपहार भेजे थे । उन्हें वहाँ के निवासियों को उसने अध्ययन कराया । एक बच्चा भी अब बौद्धों की विभूति से बंचित न था ।

भिल्लुराज महाकुमार महेंद्र कठिन परिश्रम और तपश्चर्या करने से बहुत दुर्बल हो गए थे । वृद्धावस्था ने उनके शरीर को जीर्ण कर दिया था । महाराजकुमारी ने द्वीप की स्त्रियों को पवित्र धर्म में रँग दिया था । दोनों पवित्र आत्माएँ अपने जीवन को धैर्य से गला चुके थे । उन्हें वहाँ रहते युग बीत गया था । एक दिन उन्होंने कुमारी से कहा—

‘आर्या संवमित्रा ! मेरा शरीर अब बहुत जर्जर हो गया है । अब इस शरीर का अंत होगा । यह तो शरीर का धर्म है । तुम

प्राण रहते अपना कर्तव्य पूर्ण किए जाना ।'

उसके मुख पर संतोष के हास्य की रेखा थी ।

उसी रात्रि को एक अनुचर ने, जो कुमार के निकट ही सोता था, देखा कि उनका आसन खाली है । वह तत्काल उठकर चिल्लाने लगा—'हे प्रभु ! हे प्रभु !' समुद्र की लहरों किनारों पर टकराकर उस पार के मित्रों की आनंद-ध्वनि ला रही थी । अनुचर ने देखा, महाकुमार भिक्षुराज बोधि-वृक्ष को आलिंगन किए पड़े हैं । उनके नेत्र मुद्रित हैं । अनुचर लपककर चरणों में लोट गया । लोग जाग गए और वहीं को आ रहे थे । इस भीड़ को देखकर कुमार मुस्कराए, सब को आशीर्वाद देने को उन्होंने हाथ उठाया, पर वह दुर्बलता के कारण गिर गया । धीरे-धीरे उनका शरीर भी गिर गया । अनुचर ने उठाकर देखा, तो वह शरीर निर्जीव था । उस स्निग्ध चंद्रमा की चाँदनी में, उस पवित्र बोधि-वृक्ष के नीचे वह त्यागी राजपुत्र, ससागरा पृथ्वी का एक-मात्र उत्तराधिकारी धरती पर निश्चित होकर अटूट सुख-नीद सो रहा था, और भक्तों में जो जो सुनते थे, एकत्र होते जाते थे, और चार आँसू बहाते थे ।

७

वह आश्विन-मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी थी, जब भिक्षुराज महेंद्र ने जीवन समाप्त किया था । उस समय यह महापुरुष अपने भिक्षु-जीवन का साठवाँ वर्ष मना रहा था, उसकी आयु अस्सी वर्ष की थी । उसने अड़तालीस वर्ष तक लंका में बौद्ध-धर्म का प्रचार किया ।

उस समय महाराजा तिष्य को मरे आठे वर्ष बीत चुके थे । उसके छोटे भाई उत्तिय ने, जो अब राजा था, जब इस महापुरुष की मृत्यु का संवाद सुना, तब वह बालक की तरह रोता और बिलखता हुआ उस पवित्र पुरुष के गुण-गान करता दौड़ा ।

राजा की आज्ञा से भिन्नुराज का शव सुगंधित तैल में रखकर, एक सुनहरे बक्स में बंदकर, अनेक सुगंधित मसालों से भर दिया गया । फिर वह एक सुनहरे शकट पर, बड़े जुलूस के साथ अनुराधापुर लाया गया । समस्त द्वीप के अधिवासियों और सैनिकों ने एकत्र होकर इस महाभिन्नुराज के प्रति अपनी श्रद्धांजलि भेंट की ।

राजधानी की गलियों से होता हुआ जुलूस अंत में पनहंभ-माल के विहार में जाकर रुका, जहाँ वह शकट सात दिन रक्खा रहा । राजा की आज्ञा से विहार से पचीस मील तक चारों ओर का प्रदेश तोरणा, ध्वजा, पताका और फूल-पत्तों से सजाया गया ।

इसके बाद वह शव चंदन की चिता पर रक्खा गया, और राजा ने अपने हाथ से उसमें आग लगाई ।

जब चिता जल चुकी, तब राजा ने राख का आधा भाग चैत्य-पर्वत पर महितेल में ले जाकर गाड़ दिया, और शेष आधा समस्त विहारों और प्रमुख स्थानों में गाड़ने को भेज दिया ।

८

इस प्रकार अब से बाईस सौ वर्ष पूर्व वह महापुरुष असाधारण रीति से जन्मा, जिया और मरा । लंका-द्वीप को इस महा-

पुरुष ने जो लाभ प्रदान किया, वह असाधारण था। उसने यहाँ की भाषा, साहित्य और जीवन में एक नवीन सभ्यता की स्फूर्ति पैदा कर दी थी, और कला-कौशल में उत्क्रान्ति मचा दी थी। यह सब इस द्वीप के लिए एक चिरस्थायी वरदान था।

आज भी वर्ष के प्रत्येक दिन और विशेषकर पौष की पूर्णिमा को अनेकों तीर्थ-यात्री महितेल पर चढ़ते दिग्वाई देते हैं, और प्राचीन कथाओं के आधार पर इस महापुरुष से संबंध रखने वाले प्रत्येक स्थान की यात्रा करके अद्वाजलि भेंट करते हैं।

जिस स्थान पर महाकुमार का शव-दाह हुआ था, वह स्थान अब भी 'इसी भूमागन' अर्थात् 'पवित्र भूमि' कहाता है, और तब से अब तक उस स्थान के इर्द-गिर्द पचीस मील के घेरे में जो पुरुष मरता है, यही अंतिम संस्कार के लिए लाया जाता है।

इस राजभिन्नु ने जिन जिन गुफाओं में निवास किया था, वे सभी महेंद्र-गुफा कहाती हैं। अब भी चट्टान में कटी हुई एक छोटी गुफा को 'महेंद्र की शय्या' के नाम से पुकारते हैं। पहाड़ी के दूसरी ओर 'महेंद्र-कुंड' का भग्नावशेष है, जिसे देखकर कहा जा सकता है कि उस पर न-जाने कितना बुद्धिबल और धन खर्च किया गया होगा।

क्या भारत के यात्री इस महान् राजभिन्नु की लीला-भूमि को देखने की कभी इच्छा करते हैं ?

新 華 書 局

जीवन-परिचय

आप दिगम्बर जैन हैं । मुम्बई में व्यवसाय करते हैं । प्रसिद्ध हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय के संस्थापक आप ही हैं । हिंदी के सिद्धहस्त लेखक हैं । विचित्र स्वयंवर और कुणाल दोनो कहानियों का आपने बंगला से अनुवाद किया है । हिंदी जैन साहित्य की भी आपने स्तुत्य सेवा की है । हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय में आपने आज तक जितनी भी हिंदी-पुस्तकें प्रकाशित की हैं, सब की सब साहित्य की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं । मुम्बई में आप सब से पहले हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशक हैं ।

मे वैदिक पूजापाठ समाप्त करके नौ बजे के पहले ही आँखें मूँदने लगता था। कोई कोई कहते हैं कि उम समय देश में बौद्ध धर्म के अभ्युदय का वही प्रभाव था जो अफ्रीम के नशे का होता है।

अब तक जो थोड़े बहुत ग्रन्थ, पत्र, शिलालेख, ताम्रशासन, दानपत्र आदि पाये गये हैं, उनसे इस बात का पता लगता है कि संध्या के पहले ही सत्यसेन के हाथ, पैर, खङ्ग और चाबुक आदि खुल जाते थे और दोषी, निर्दोषी, धार्मिक, अधार्मिक आदि सब ही के कंधों और पीठों पर बिना किसी विचार और आपत्ति के पडने लगते थे।

सारी प्रजा थर थर काँपती थी।

सत्यसेन के और कोई संतान न थी, केवल एक कन्या थी। उसका नाम था मंद्रा। वह धनुर्बाण लेकर घोड़े पर चढ़ती थी और चाहे जहा, जब चाहे तब घूमा करती थी। वन, पर्वत, जंगल, मरुस्थल और श्मशान आदि सब ही स्थानों में उसकी गति अरोक थी। निशाना मारने में वह एक ही थी। पशु, पक्षी, सिंह, व्याघ्र, चोर, डाकू आदि सब ही उसके भय से काँपते थे।

मंद्रा का शरीर कृश था। उसके भ्रमर सरीखे काले काले बाल नितम्ब देश से नीचे तक लहराते थे। बड़ी बड़ी और काली आँखों के बीच में उसकी तीक्ष्ण दृष्टि स्थिर रहती थी। षोडशी गौरी के समान वह भुवनमोहिनी थी; परंतु उसके मृणाल के समान कोमल हाथ पत्थर से भी अधिक कठोर थे। वह हरिणी के समान चंचल और वायु के समान शीघ्रगामिनी थी।

मंद्रा के स्वयंवर की कई बार चर्चा उठी; परंतु दो सौ योजन तक की दूरी के किसी भी वीरपुरुष का यह साहस न हुआ कि वह उसके साथ पाणिग्रहण करने का उद्योग करे।

इतना ही नहीं कि वह किसी को पसंद नहीं करती थी— साथ ही वह यह भी समझती थी कि सब लोग भयानक चोर लंपट और डाकू हैं। इस बात की मनाई न थी कि कोई उसके राज्य में आवे जावे ही नहीं। नहीं, जिसको आना जाना हो खुशी से आवे और बहा रहे, परंतु कोई विवाह की चर्चा न करे। बस, अंग राज्य में सब से अधिक भयंकर बात उसके विवाह की चर्चा ही थी।

राजा सत्यसेन भी मंद्रा से डरता था। देश के दूसरे राजा और सारी प्रजा भी उससे भयभीत रहते थे। ऐसी दशा में उसके विवाह की चर्चा कौन उठावे ? मंद्रा कुमारी रह गई—उसका विवाह न हुआ।

मंद्रा की माता न थी। माता की मृत्यु के बाद पिता का सारा भार उसने उठा लिया था। इस तरह वह अपूर्व लड़की उस समय राजकार्य का भार, यौवन का भार, सुखदुख की स्मृति का भार, ज्ञान का भार और धर्म का भार लेकर अपने जीवन के पथ में अकेली चल रही थी।

राजसभा के विशाल भवन में आज बहुत से मंत्री, बड़े बड़े राजकर्मचारी और मित्रराज्यों के कई राजकुमार उपस्थित हैं। मंद्रा महाराज के सिंहासन के पीछे बैठी हुई है। एक ओर कर्ण-सुवर्ण के राजपुत्र कुमार नायकसिंह ऊँची गर्दन किये हुए उस

अद्भुत और अपूर्व ब्यलिका के रूप को देख रहे हैं। नायकसिंह सुंदर, सुसज्जित और सुवीर हैं। वे मंद्रा के पाणिप्रहण की इच्छा से चम्पा नगरी में आये हैं।

एक सप्ताह के बाद अमावास्या है। इसलिए कालीपूजन और निमंत्रण आदि के विषय में विचार हो रहा है। सब ही की यह राय हुई कि पूर्व पद्धति के अनुसार अंग देश में कालीपूजा अवश्य की जाय।

राजा सत्यसेन बोले, 'कुमारी मंद्रा से भी पूछ लेना चाहिये।'

मंद्रा निष्कंप और स्थिर दृष्टि से धरती की ओर देख रही थी और किसी गहरी चिंता में डूब रही थी। धीरे धीरे सब की आँखें भ्रमने लगी। राजा को, मंत्रियों को और प्रजा के लोगों को—सब को तंद्रा आने लगी।

मंद्रा के निद्रारहित नेत्रों को भी तंद्रा ने घेर लिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसकी आँखें भ्रमने लगीं।

इसी समय उस विशाल सभाभवन के द्वार पर एक भिन्नक आकर खड़ा हो गया।

२

भिन्नक का न सिर मुँडा था और न उसके हाथ में कमण्डलु ही था। एक सफ़ेद चादर से उसका सारा शरीर ढका हुआ था,

इसलिए यह न मालूम होता था कि वह बालक है या युवा, मोटा ताजा है या दुर्बल ।

उसकी दृष्टि वैराग्यपूर्ण थी और आकार रहस्यमय था । उसके सिर के बाल कुछ कुछ जटाओं का रूप धारण कर रहे थे । उसके मोतियों के समान दाँतों के बीच में तुषार जैसी हँसी की रेखा झलकती थी और प्रशस्त ललाट में चिंता की कुछ कुछ सिकुड़न पड़ रही थी । उसका रंग उज्ज्वल था और शरीर प्रकाशवान ।

भिन्नु ने धीरे धीरे भीतर पहुँच कर कहा, 'सब का कल्याण हो ।'

शब्द के होते ही उस विशाल भवन के हजारों तंद्रापूर्ण नेत्र उसके ऊपर जा पड़े ।

निद्रा में एकाएक बाधा पड़ जाने से राजा सत्यसेन को बड़ा क्रोध आया । वे बोले, 'यह आदमी चोर है ।'

भिन्नु ने दोनों हाथ उठाकर कहा, 'आपका कल्याण हो ।'

तब मंद्रा ने पिता के कान में कुछ कहकर, सर्पिणी के समान क्रुद्ध होकर पूछा 'तुम किस राज्य के प्रजाजन हो ?'

भिन्नु—विश्व-राज्य के ।

मंद्रा—मालूम होता है तुम कोई स्वाँगधारी डाकू हो ।

भिन्नु—कल्याण हो ।

मंद्रा—कल्याण कौन करेगा ?

भिन्नु—जीव झपना कल्याण आप ही करता है ।

मंद्रा—मैं तुम्हारा परामर्श रूप ऋण नहीं लेना चाहती ।

भिन्नु—मैं ऋण नहीं देता, दान करता हूँ । मैं देखता हूँ कि इस विशाल राज्य में शक्तिपूजा की तैयारी हो रही है, जो बहुत ही घृणित और हत्याकारी कर्म है । यह सृष्टि की बाल्यावस्था की अज्ञानजन्य क्रिया के अनिर्गन्त और कुछ नहीं है । आप ज्ञानलाभ करके इसे छोड़ दें ।

प्रधान मंत्री बोला, 'यह कोई बौद्ध भिन्नु है ।' सेनापति रुद्रनारायण ने कहा, 'इसको बाँध कर शूली पर चढ़ा देना चाहिए ।'

मंद्रा क्रोध से जल उठी । उसने कठोर शब्दों में कहा—
'काली-पूजा अवश्य होगी और उसमें सैकड़ों हजारों जीवों को बलि दिया जायगा । क्या इससे तुम्हारी कुछ हानि है ? और क्या तुम जैसे क्षुद्र पुरुषों में उसके रोकने की शक्ति है ?'

राजा बहुत ही प्रसन्न होकर हँसने लगे । लोगों ने सोचा था कि मंद्रा काली-पूजा का विरोध करेगी; परंतु उन्होंने देखा कि एकाएक इस रुकावट के आजाने से उसका विचार बदल गया । मंद्रा का स्वभाव ही ऐसा था ।

भिन्नु बड़े अभिमान के साथ ऊँचा मस्तक करके मंद्रा के प्रज्वलित नेत्रों की ओर स्थिर भाव से देखने लगा और बोला—

‘राजकुमारी मद्रा ! इस समय मैं तुम्हें ही काली ममभक्ता हूँ । कहो, तुम कितने हजार बलिदानों से तृप्त होओगी ?’

मद्रा—तू देवद्वेषी और दुराचारी पुरुष है, इसलिए मैं पहले तेरी ही बलि लूंगी ।

भिक्षु—यदि इस जुद्ध जीव के बलिदान से तुम्हारे और तुम्हारी प्रजा के हृदय में करुणा का संचार हो, तो मैं तैयार हूँ । यह ठीक है कि दुर्दमनीय प्रकृति की संहारशक्ति को रोकने का बल मुझ में नहीं है, तो भी यदि प्रकृति चाहे, तो वह स्वयं उम्मे रोककर संसार को आनंदमय बना सकती है । इसलिए मैं उम्मे उत्तेजित या उद्दीपित करने के लिए तत्पर हूँ ।

मद्रा—किस उपाय से ?

भिक्षु—केवल निमित्त बनकर, अर्थात् सेवा करके, ज्ञान का प्रचार करके, और संयम की शिक्षा देकर । कुमारी, यह विशाल राज्य पतनोन्मुख हो रहा है । जब राजा के हृदय में दया नहीं है, और वह किसी को आत्म-त्याग करना नहीं सिखलाता, तब तुम निश्चय समझो कि एक राजा मिटकर हजारों राजा हो जायँगे और देश में राष्ट्रविप्लव हो जायगा । जब धर्म की जलती हुई आग राजसिंहासन से भ्रष्ट होकर अन्य आधार ग्रहण करती है और उस महान विप्लव के समय करुणा, स्नेह, पवित्रता, साम्य, शांति और प्रीति आदि सद्गुण नहीं होते, तब उसमें सब ही भस्म हो जाते हैं । इस बड़े भारी राज्य में पाप का प्रवेश हो गया

है। यहाँ मद्यमांस का श्राद्ध और सतीत्व धर्म का सत्यानाश किया जाता है। यहाँ निःसहाय और मूक प्राणियों को बलि चढाकर पाप को उकसाया जाता है। कुमारी मंद्रा, कालीपूजा की फिर से प्रतिष्ठा कराके ये सब लोग बिना समझे बूझे घोर तामसी वृत्ति को अपनी ओर खींचने का उद्योग कर रहे हैं। तुम्हें चाहिये कि इस जीव-बलि की जगह आत्मबलि की शिक्षा देकर पूजाप्रतिष्ठा करो। यह आत्मबलि ही सही कालीपूजा है। यह बौद्ध भिक्षु भी तुम्हारी इस पूजा का प्रसाद लेकर आत्मतुष्टि करेगा ?

उक्त व्याख्यान सुनते सुनते बहुत से लोग फिर ऊँघने लगे। राजा साहब का उनमें पहला नम्बर था। मंद्रा ने कहा, 'यह आदमी पागल है, इसको देवदत्त पुजारी के घर में कैद करके रखो।'

३

बूढ़ा देवदत्त पुजारी घोर शाक्त था। उसका एक वामनदास नाम का पुत्र था, जिसकी उमर लगभग १५ वर्ष के थी। वह एह बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर वेदपाठ करता था। उसकी बूढ़ी माता हरिनाम की माला जपा करती थी। पुजारी के घर में इन तीन जनों के अतिरिक्त सत्यवती नाम की एक लड़की और थी।

सत्यवती देवदत्त की कन्या है, परंतु कैसी कन्या है यह किसी को मालूम नहीं। कई लोगों का कथन है कि वह किसी क्षत्रिय की कन्या है। जब वह छोटी सी थी, तब देवदत्त उसे मिथिला से ले आया था। कोई कोई कहते हैं कि एक बार देवदत्त माघी पूर्णिमा

के मेले में गया था और वहाँ इसे गंगा नदी के तट पर अकेली पड़ी देखकर उठा लाया था। सत्यवती की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष की है।

सत्यवती बहुत ही सुंदर है। उसका मुखकमल सदा ही प्रफुल्लित रहता है। घर के काम काज में वह बड़ी चतुर है। सेवा शुश्रूषा करना ही उसका व्रत है। इसी व्रत में उसका जीवन और यौवन वर्द्धित और पालित हुआ है।

सेनापति रुद्रनारायणसिंह हाथ में नंगी तलवार लिए हुए देवदत्त के घर पहुँचा। क़ैदी भिन्न उसके साथ था।

देवदत्त उसे देखकर बाहर आँगन में आ खड़ा हुआ।

सेनापति—राजकुमारी मंद्रा ने आज्ञा दी है कि यह बौद्ध-भिन्नक आपके यहाँ सात दिन तक क़ैद रहे !

देवदत्त—इसके लिए कोई पहरेदार भी रक्खा जायगा ?

सेनापति—न।

देवदत्त—तब तो बड़ी कठिनाई होगी ! यदि कहीं भाग गया तो ?

सेनापति—यदि भाग गया तो इसके साथ आपका यह जटाधारी मस्तक भी चला जायगा ! इसलिए इसे किसी तरह अपने तन्त्रमन्त्रबल से बँध कर रखिएगा।

सेनापति चला गया। देवदत्त ने भिन्न की ओर देखा। उस देवतुल्य सुंदर युवा की मूर्ति देखकर उसे विश्वास हो गया कि भिन्न

भाग जाने वाला व्यक्ति नहीं है। इसके बाद उसने कुछ सोचकर पुकारा—‘सती !’

सत्यवती भरोखे में सं देख रही थी। शीघ्र ही बाहर होकर नीचा सिर किये हुए बोली, ‘कहिए, क्या आज्ञा है ?’

देवदत्त—यह बौद्ध भिक्षु राजकुमारी की आज्ञा से सात दिन के लिए अपने यहां क़ैद रक्खा गया है। इसकी देखरेख रखने का भार तुम्हें सौंपा जाता है।

सत्यवती ने हँसकर कहा—अच्छा, किंतु यदि यह भाग गया तो ?

देवदत्त—यह वामनदास के बराबर न दौड़ सकेगा। उसको ज़रा मेरे पास बुला लाओ।

पिता की आज्ञा से वामनदास ने रात को पहरा देना स्वीकार किया। दिन की देखरेख का भार सत्यवती पर रहा।

भाई-बहिन को भिक्षु की देखरेख का भार सौंप कर देवदत्त मंत्र जपने के लिए फिर घर में चला गया और वामनदास अपने वेदपाठ में लग गया। सत्यवती साहस करके भिक्षु के सामने खड़ी हो गई और बोली, ‘तुम्हें मैं क्या कहकर पुकारा करूं ?’

भिक्षु—कुमारी, मैं तुम्हारी हथेली देखना चाहता हूँ।

सत्यवती ने आदरपूर्वक अपनी हथेली आगे कर दी। भिक्षु उसे अच्छी तरह देखकर विस्मयसागर में डूब गया। ऐसा मालूम होता था कि उसे कोई पुरानी बात, या कोई पुराना दूटा हुआ

बंधन, अथवा कोई छिपी हुई स्मृति याद आ गई है। उसने बहुत ही दुःखपूर्णा स्वर से कहा,—‘अमिताभ !’

सत्यवती—तुमने यह क्या संबोधन किया ?

भिन्नु—तुम मुझे ‘शरणाभैया’ कहकर पुकारा करो।

सत्यवती ने चौंक कर पूछा, ‘क्या तुम मेरे शरणाभैया को जानते हो ?’

भिन्नु—यदि जानता होऊँ, तो क्या आश्चर्य है ?

सत्यवती—मैं उन्हें स्वप्न में देखा करती हूँ। गंगा नदी के उत्तर में हिमालय से सटा हुआ एक अरण्य है। सीता का जन्म वही हुआ था। बहुत ही सुहावना वन है। वहाँ सोने के पक्षी जहाँ तहाँ वृक्षों पर उड़ा करते हैं और ऋषियों के समान सरल स्वभाव के मनुष्य वहाँ निवास करते हैं। उसी वन में मेरे शरणाभैया रहते हैं।

भिन्नु—नहीं, मैं उस वन में नहीं रहता। वह वन तो इस समय व्याघ्र और रीछों से भरा हुआ है। मैं एक बौद्ध भिन्नु हूँ। देश देश में धर्मप्रचार करता हुआ घूमा करता हूँ।

सत्यवती—पर यह बड़ा आश्चर्य है कि तुम्हारा और उनका नाम एक सा मिल गया। मेरे शरणाभैया, भिन्नु नहीं—राजपुत्र है।

भिन्नु—स्वप्न के राजपुत्र की अपेक्षा जागृतावस्था का भिन्नु अच्छा है। क्योंकि तुम्हारा यह भाई सत्य है और वह स्वप्न का भाई

मिथ्या है। सती बहिन, तुम स्वप्न को छोड़कर सत्य का अवलंबन करो।

सत्यवती मंत्रमुग्ध सरीखी हो रही। उसने स्नेहपूर्ण स्वर से कहा, 'अच्छा।'

४

राज्य के कोशाध्यक्ष लाला किशनप्रसाद ने मन-ही-मन सोचा कि राजकुमारी मंद्रा की इस अद्भुत आज्ञा का कोई न कोई गूढ़ आशय अवश्य है। एक युवा पुरुष को सत्यवती के समान सुंदर युवती के घर क़ैद करने की कूट नीति को लाला साहब तत्काल ही समझ गये। लाला साहब जाति के क्षत्रिय हैं। ३० वर्ष के लग-भग होने पर भी आपका अभी तक विवाह नहीं हुआ। आप शक्ति की पूजा करते हैं। रंग आपका काला है, किंतु आप समझते हैं कि काला होने पर भी मैं सुंदर हूँ। शरीर की सजावट पर और कपड़ों लत्तों की बनावट पर आपका ध्यान बहुत रहता है। गुपचुप हँसना, चोरी करके सीनाज़ोरी करना, बातों में जमीन और आसमान के कुलाबे मिला देना आदि आपके स्वभाव-सिद्ध गुण हैं। राज्य में आप एक पराक्रमी वीर समझे जाते हैं और धन दौलत भी सब आपके हाथ रहती है, इसलिये लोग आपको सेनापति और मंत्री की अपेक्षा भी अधिक मानते हैं। आप राजकुमारी मंद्रा के अतिरिक्त और किसी से नहीं डरते, क्योंकि आपकी शक्ति, बुद्धि, चालाकी आदि सब ही उसके सामने व्यर्थ हो जाती हैं।

लाला किशनप्रसाद देवदत्त के पड़ौस ही में रहते हैं । सत्यवती का अपूर्व रूप और विमल चरित्र देखकर आपका मन आपके वश में नहीं रहा है । किंतु जिसके कुल और शील का कुछ पता नहीं, ऐसी युवती के साथ विवाह करना मेरी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है, यह सोचकर आपने अंत में यह निश्चय किया है कि किसी तरह सत्यवती को हरण करके उसके साथ गान्धर्व विवाह किया जाय ।

लाला साहब ने बड़ी कठिनाता से सत्यवती के हृदय में एक शरत्काल के बादल के टुकड़े की सृष्टि कर पाई है । सत्यवती सोचती होगी कि किशनप्रसाद मुझे चाहते हैं । जब आपने उसका यह अभिप्राय समझने की कोशिश की, तब आपके चित्त पर आशा की एक रेखा खिंच गई । थोड़े दिनों में यही रेखा एक प्रकार के आंदोलन से सारे हृदय में व्याप्त हो गई और अंत में वह इतनी प्रबल हो उठी कि कुछ दिन पहले जब आपने एक बार सत्यवती को अकेली पाया, तब आप अपने निस्वार्थ और हताश प्रेम का परिचय देकर रोने तक लगे और बोले 'यदि मेरा तुम्हारे साथ विवाह न होगा, तो मैं इस संसार को छोड़कर किसी अज्ञात तीर्थ पर जाकर मर जाऊँगा और मरके भूत बन जाऊँगा' । इस भूत की भीति और करुणा से अभिभूत होकर उस दिन सत्यवती ने कह दिया, 'अच्छा, आप यह बात पिता जी से कहना ।'

लाला साहब अपने मनोरथ के सिद्ध होने की आशा से आजकल खूब बन-ठन कर रहते हैं, किंतु इसी बीच यह बखेड़ा हो गया । उन्होंने देखा कि बखेड़े के संमुख बौद्ध भिक्षु और पीछे राजकुमारी मंद्रा खड़ी है ।

चतुर किशनप्रसाद ने जहां तहां यह गप्प उड़ा दी कि बौद्ध भिच्चु बड़ा भारी योगी है, उसके योगबल की प्रशंसा नहीं हो सकती। बस, फिर क्या था, झुंड के झुंड स्त्री-पुरुष देवदत्त के घर आने जाने लगे। इसके सिवा लाला साहब कभी कभी मौका पाकर सुंदरी कुमारियों को संन्यासिनियों के वेष में और रूपवती वेश्याओं को गृहस्थों की कन्याओं के वेष में भी वहा भेजने लगे, जिससे कि किसी तरह भिच्चु पथ-भ्रष्ट हो जाय किंतु वे सब ही वहा से विफलमनोरथ लौटने लगी। उस बौद्ध भिच्चु के अजेय हृदय-दुर्ग का एक अणु भी विचलित न हुआ। लाला जी की झूठी गप्प सच हो गई। उसका असीम करुणामय मुख देखकर और उसकी स्नेहमयी बाणी सुनकर सैकड़ों स्त्री-पुरुष बौद्धधर्म ग्रहण करने लगे।

यह बात धीरे धीरे राजकुमारी के कानों तक जा पहुँची। कृष्ण त्रयोदशी की संध्या को उसने सेनापति को आज्ञा दी कि 'किशनप्रसाद को इसी समय मेरे सामने लाया जाय।'

५

तत्काल ही किशनप्रसाद उपस्थित किया गया। सेनापति को वहां से चले जाने का इशारा करके राजकुमारी मंद्रा ने गरज कर कहा, 'किशनप्रसाद, सच सच कहो, तुम्हारा क्या अभिप्राय है?' किशनप्रसाद ने हाथ जोड़कर कहा, 'राजकुमारी, धर्म के नाते आप सब की माता हैं और मैं आपकी संतान हूँ। इसलिये मैं आप से कुछ छिपाना नहीं चाहता। सत्यवती पर मेरा अनुराग है—मैं उसे हृदय से चाहता हूँ, परंतु मालूम होता है कि आपने इस बात को न जानकर

इस दरिद्र के रत्न को किसी गूढ़ उद्देश्य से दूसरे के हाथ देने का संकल्प कर लिया है ।'

मंद्रा—पापी, तू चरित्रहीन तस्कर है । तेरे मुँह से अनुराग और प्रेम की बात शोभा नहीं देती ।

किशनप्रसाद—(विनीत भाव से) मैंने धीरे धीरे अपना चरित्र सुधार लिया है । अब मैं सत्यवती को ब्याह कर किसी अन्य राज्य में जाकर रहने लगूँगा ।

मंद्रा—वाह, कैसा निस्वार्थ भाव है ! अरे कृतघ्न, तू राजवंश के अन्न से पलकर अब क्या विद्रोही बनना चाहता है ?'

किशन०—विद्रोही ? मैंने ऐसा कौनसा काम किया है ?

मंद्रा—तू भिक्षु को ललचा कर भ्रष्ट करना चाहता है और इसके लिए भरसक निन्द्य काम कर रहा है । परिणाम इसका यह है कि देश में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ता जा रहा है ।

किशन०—मेरे ललचाने का इसके सिवा और कोई उद्देश्य नहीं कि भिक्षु का मन सत्यवती से हटकर किसी दूसरी ओर लग जाय । और आपने जो बौद्धधर्म के प्रचार की बात कही है, सो भिक्षु को यहाँ से निकाल देने पर ही बस हो जायगी । उसके जाते ही बौद्धधर्म की जड़ उखड़ जायगी । राजकुमारी, अब भी समय है—कुछ उपाय कर दीजिये, नहीं तो भिक्षु सत्यवती को लेकर भाग जायगा ।

मंद्रा—तू झूठ बकता है ।

किशन०—नहीं; मैं सच कहता हूँ।

मंद्रा की आवाज़ लड़खड़ा गई। इसके पहले अंगराज्य की राजकुमारी की कठोर आवाज़ को किसी ने भी लड़खड़ाने न सुना था।

मंद्रा—किशनप्रसाद, क्या यह बात सच है ?

किशन०—बिलकुल सच है। सत्यवती भिन्दु को अपना हृदय सौंप रही है।

मंद्रा—और भिन्दु ?

किशन०—वह तो कभी का सौंप चुका है।

जिस तरह हवा के तेज़ झोंके से वृक्षों में से सनसन करती हुई आवाज़ निकलने लगती है, उसी तरह की दुःखभरी आवाज़ से मंद्रा ने कहा—‘क्या सौंप चुका है ?’

किशन०—हृदय।

मंद्रा—पापी, तू क्या जानता है कि हृदय किस तरह सौंपा जाता है ?

किशनप्रसाद ने मन-ही-मन कहा—हाँ, खूब जानता हूँ। अब केवल उपाय निकलने की देरी है फिर तो काम सिद्ध ही हुआ समझो। इसके बाद उसने प्रकाशरूप से कहा, ‘राजकुमारी, आप मेरी बात पर तब विश्वास करेंगी, जब आप आज या कल सुनेगी।’

कि भिन्नु सती को लेकर भाग गया । कहिये, अब इस सेवक के लिए क्या आज्ञा है ?'

मंद्रा—तुम उसे रोकना और दोनों को बाँधकर ले आना । ज़रूरत हो तो सेनापति की भी सहायता ले लेना, अंग राज्य से एक कुमारी को लेकर—

किशन०—भागना—

मंद्रा—बड़ा भारी अपराध है । उसको कठिन दंड देना चाहिए ।

किशनप्रसाद चला गया ।

आधी रात का समय है । भिन्नु देवदत्त के घर ध्यान में मग्न हो रहा है । इतने में सत्यवती ने धीरे से आकर किवाड़ खोले और दुःखभरे कण्ठ से कहा, 'शरण भैया !'

भिन्नु ने आँखे खोलकर कहा, 'क्यों सती ?'

सत्यवती—शरण भैया, मैं तुम से एक बात न कह पाई थी । आज किशनप्रसाद मुझे तुम्हारे पास से छीन ले जायगा ।

भिन्नु—(विस्मित होकर) इसका क्या मतलब ? यह तो मैं जान गया हूँ कि किशनप्रसाद दुराचारी पुरुष है; परंतु उसे तुम्हें छीन ले जाने का क्या अधिकार है ?

सत्यवती—किशनप्रसाद मेरे साथ विवाह करना चाहता था । परंतु उसकी यह इच्छा पूरी न हुई; इसलिए आज रात को वह मुझे

बलपूर्वक ले जायगा । इस संकट से बचने का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं कि इस देश को ही छोड़ दिया जाय । भैया, इस देश में धर्म नहीं है । मैं तो अब संन्यासिनी हो जाऊंगी और बुद्ध भगवान् की शरण लेकर घर घर भीख माग कर अपना जीवन व्यतीत करूंगी ।

भिक्षु ने उस कोठरी के टिमटिमाते हुए दीपक की ओर देखकर एक लम्बी सांस ली और कहा, 'अच्छा, भगवान् की इच्छा पूर्ण हो । संन्यासिनी बहन, लो, अब तुम तैयार हो जाओ । यह तो तुम्हें मालूम है कि जंगल बड़ा दुर्गम है । क्या तुम मेरे साथ दौड़ सकोगी ।'

सत्यवती के हृदय में एक अलक्षित शक्ति का संचार हो गया, उसने आनन्द और उत्साह से कहा, 'जंगल क्या चीज़ है, मैं नदी और पर्वतों को भी सहज ही पार कर जाऊंगी ।'

सारा नगर घोर निद्रा में मग्न था । चारों ओर सन्नाटा छा रहा था । रास्तों पर एक भी मनुष्य नहीं दिखाई देता था । भिक्षु सत्यवती के साथ देवदत्त के घर से चल दिया ।

६

रात ढल चुकी थी । राजकुमारी मंद्रा चम्पागढ़ के सिंहद्वार को पार करके ठहर गई । वह एक शीघ्रगामी घोड़े पर सवार थी और हाथ में धनुर्बाण लिए थी । उसने कुमार नायकसिंह

को पुकार कर कहा, 'कुमार, आप अंगराज्य के पुराने मित्र हैं । इस समय आपको मेरी एक बात माननी होगी ।'

कुमार नायकसिंह ने प्रसन्नता-पूर्वक कहा—'मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिए तैयार हूँ ।'

मंद्रा—राजधानी से बाहर जाने के केवल दो ही रास्ते हैं । अभी थोड़ी ही देर पहले बौद्धभिक्षु कुमारी सत्यवती को लेकर भागा है । यह तो नहीं मालूम कि वह किस रास्ते गया है; परंतु गया है इन्हीं दो रास्तों में से किसी एक से । अभी घड़ी भर पहले ही किशनप्रसाद ने मुझे इस बात की सूचना दी है । अतएव राजधर्म के अनुसार उन दोनों को रोकना हमारा कर्तव्य है । एक रास्ते से तो मैंने किशनप्रसाद खजांची और रुद्रनारायण सेनापति को चार होशियार सैनिकों के साथ भेज दिया है, अब एक रास्ता और है । आपकी शूरवीरता की मैंने बहुत प्रशंसा सुनी है, इस लिए मैं चाहती हूँ कि इस दूसरे रास्ते से आप ही जावेँ और भिक्षु तथा सत्यवती को कैद कर लावे । आप घोड़े पर सवार होकर अकेले ही जाइए । जरूरत होगी तो मैं भी आपकी सहायता करूँगी ।'

कुमार नायकसिंह ने एड़ लगाकर अपना घोड़ा छोड़ दिया । मंद्रा को घबराई हुई और चिन्तित-सी देखकर नायकसिंह के मन में बारबार यह प्रश्न उठने लगा कि बौद्ध भिक्षु के मार्ग में मंद्रा का क्या काम ?

काली रात है । नैश वायु दूरवर्ती पर्वत माला से टकराकर अरण्य को व्याप्त कर रही है । तारे छिटक रहे हैं । पूर्व की ओर

के आकाश में बादलों के कई सफेद सफेद टुकड़े इधर उधर बिखर रहे हैं ।

लगभग एक कोस चल कर सत्यवती ने कहा, 'शरणा भैया, मालूम होता है पीछे से हमे पकड़ने के लिए घुडसवार आ रहे हैं ।'

भिन्नू ने हँसकर कहा, 'सत्यवती, मैं अपने जीवन में ऐसे बहुत से घुडसवार देख चुका हूँ । उनका मुझे जरा भी भय नहीं; भय है तो केवल तुम्हारी रक्षा का । इस समय बस एक ही उपाय है । देखो, इस ऊँचे पर्वत की बाईं ओर से एक दूसरा रास्ता गया है, तुम उसी रास्ते से भागो । मैं इन सब को हटा कर तुम्हारे पास आता हूँ ।

सत्यवती भय के मारे कुछ न कह सकी और बतलाये हुए रास्ते से भागी । थोड़ी ही देर में चार सवारों ने और सेनापति रुद्रनारायण ने आकर भिन्नू को घेर लिया । केवल किशनप्रसाद घोड़े पर चढ़े हुए खड़े रहे ।

पाँचों सवार तलवारें सूँत कर भिन्नू को पकड़ने की चेष्टा करने लगे ।

इसी समय किशनप्रसाद ने चिल्ला कर कहा, 'और सत्यवती कहाँ है ? वह अवश्य ही किसी दूसरे रास्ते से भाग गई है !'

किशनप्रसाद को उसी रास्ते से जाते देख भिन्नू ने गर्ज कर कहा; 'सावधान, पापिष्ठ, खड़ा रह । अपने हाथ से अपनी मौत मत बुला ।'

उसी समय, बात की बात में भिन्नु ने लौपक कर एक योद्धा के हाथ से तलवार छीन ली और वह रणस्थल में अड गया। अपने विलक्षण हस्तकौशल तथा असीम पराक्रम से उसने चार योद्धाओं को बात की बात में परास्त और निरस्त कर दिया। धराशायी योद्धाओं में से रुद्रनारायणसिंह भिन्नु के सामने बहुत देर तक टिका रहा। अंत में उसने कहा, 'भिन्नु, तुम्हारा वीरत्व और युद्धकौशल अपूर्व है। बौद्ध धर्म छोड़कर यदि तुम क्षत्रिय-धर्म ग्रहण करते, तो अवश्य ही किसी विशाल राज्य के सिंहासन को सुशोभित करते ?'

इसके उत्तर में भिन्नु ने कहा, 'वीर, मैं इस समय तो धर्म की रक्षा के लिए अवश्य ही क्षत्रिय हूँ, परंतु कल फिर गली गली में भटकने वाला भिखारी हो जाऊंगा। इस समय डाकुओं के हाथ से इस भिखारी को अपने एकमात्र धन—'

इसी समय अंधकार में से किसी स्त्री के कण्ठ का शब्द सुन पड़ा। भिन्नु ने देखा कि थोड़ी ही दूर पर राजकुमारी मंद्रा धनुर्बाण लिए खड़ी है।

मंद्रा ने कठोर स्वर से कहा, 'भिन्नु, अपने धनरत्न के उद्धार करने के पहले तू मेरे इस बाण से अपना उद्धार करने की चेष्टा कर।'

मंद्रा का निशाना अचूक था। उसका तीक्ष्ण बाण भिन्नु के बाएँ पैर की तली को पार कर गया !

उस समय आकाश घने मेघों से आच्छादित हो रहा था। ठंडी हवा प्रबल वेग से बह रही थी। धीरे धीरे अंधकार और निबिड होने लगा। मंत्रा भिच्छु को न देख सकी। वह एक बार केवल यही सुन सकी कि, 'सत्यवती, तुम निर्दोष हो। तुम्हारा कल्याण हो।' भिच्छु का यह स्वर बड़ा ही करुण और निर्वेद-पूर्ण था।

इसी समय बिजली की कड़क से वन पर्वत कांप उठे।

मंत्रा ने अपने धनुर्बाण को फेर दिया। वह उस गहरे अंधकार में पगली के समान पुकारने लगी, 'तुम कहा हो! भिच्छु, तुम कहा हो।' किंतु भिच्छु का कहीं पता न था। भ्रमवायु से लुब्ध हुए उस अरण्य में केवल यही प्रतिध्वनि सुन पड़ती थी कि 'भिच्छु, तुम कहा हो!'

७

कुमार नायकसिंह आकाश की अवस्था देखकर घोड़े से उतर पड़े और एक बड़े पत्थर के सहारे खड़े हो रहे। इस समय उनका चित्त उदास था। इतने में बिजली फिर चमकी। उन्होंने देखा कि सत्यवती उनके पास ही से भागी जा रही है। वे उसे रोक कर बोले, 'सुंदरी, मैंने एक वीरवंश में जन्म लिया है। अपने जीवन में मुझे बुरे और भले दिन, रणभूमि और रंगभूमि सब ही कुछ देखने का अवसर मिला है। इससे कहता हूँ कि इस अंधेरी रात में यह कंटकमय और पथरीला रास्ता तुम जैसी

अबलाओं के लिए घर का आँगन नहीं है। तुम भागने का प्रयत्न मत करो।'

कुमार नायकसिंह को अंगदेश में प्रायः सब ही जानते थे। सत्यवती भी उन्हें पहचान गई, इसलिए खड़ी हो रही और आँखों में आँसू भर हाथ जोड़ कर बोली, 'कुमार, मैं अनाथा हूँ। मुझे तुम भले ही कैद कर लो, परंतु भिक्षु 'शरण भैया' को छोड़ दो।'

कुमार—उन्हे छोड़ देने का अधिकार तो मंत्रा को है। हाँ, मैं तुम्हें अवश्य छोड़ सकता हूँ। छोड़ देने में कुछ दोष भी नहीं है, क्योंकि तुम भागना नहीं जानती।

पीछे से किसी ने कहा, 'नहीं, कभी न छोड़ना। यह रमणी मेरी प्रणयिनी है।'

लाला किशनप्रसाद ने युद्धस्थल में अपनी बहादुरी की सीमा दिखलाने के लिए थोड़ी सी शराव पी ली थी। आप कुछ पास जाकर बोले, 'सत्यवती, तुम्हारा दास तुम्हारे सामने खड़ा है।'

सत्यवती ने कातर स्वर से कहा—'कुमार, मुझे बचाओ।'

'तुम्हें बचाने की शक्ति किसी में नहीं है।' कहकर लाला साहब ने सत्यवती का हाथ पकड़ लिया।^०

कुमार नायकसिंह ने सोचा, इस समय इस पिशाच की लात घुँसों से पूजा करना ही विशेष फलप्रद होगा, और बिना कुछ कहे सुने उन्होंने वैसा ही किया।

सत्यवती को छुड़ा कर कुमार ने लाला साहब की खूब पूजा की और उन्हें एक भाड़ से उन्हीं के दुपट्टे द्वारा कस कर बंध दिया ।

मंद्रा वृक्ष की ओट में खड़ी हुई ये सब बातें देख रही थीं, इतने में थोड़ी ही दूर से किसी की आवाज़ सुनाई दी—‘सती ! सती !’

सत्यवती ने कुमार का हाथ पकड़कर कातर स्वर में कहा, ‘कुमार, यह मेरे शरण भैया की आवाज़ आ रही है । तुम उन्हें किसी तरह बचा लो ।’

कुमार नायकसिंह ने कुछ आगे बढ़कर गंभीर भाव से पुकारा ‘तुम कहाँ हो ?’

भिक्षु ने पूछा, ‘तुम कौन ?’

कुमार—बौद्ध भिक्षु, मैं नायकसिंह हूँ । तुम किसी तरह का भय मत करो । सत्यवती सकुशल है और लाला किशनप्रसाद भाड़ से बंधे पड़े हैं ।

भिक्षु समीप आ गया और नायकसिंह का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, ‘भाई, तुम्हें स्मरण होगा कि मेरे पिता महाराजा अजीतसिंह ने पाटलिपुत्र के युद्ध में तुम्हारे पिता के प्राण बचाये थे । मेरे पैर में बाण लग गया है । मुझ में भागने दौड़ने की शक्ति नहीं; इसलिए अब मैं धीरे धीरे चलता हूँ और मन्दार पर्वत की सघन झाड़ी में जो एक कुटीर है, वहाँ जाकर लेटता हूँ ।

कुमार नायकसिंह, इस समय तुमने जिस अब्स्ता के धर्म की रक्षा की है वह सत्यवती मेरी छोटी बहिन है। कुम्भ के मेले में उसे कोई डाकू उठा ले गया था। इतने समय के बाद अब उसका पता लगा है। तुम सावधान रहना; मिथिला की राजकुमारी को मैं तुम्हारे ही पास छोड़े जाता हूँ।'

भिन्नु चला गया। सत्यवती दौड़कर पास आ गई और पूछने लगी 'कुमार, क्या अभी तुम्हारे पास मेरे 'शरण भैया' थे? हाय! वे कहा चले गये?'

नायकसिंह ने कहा, 'कुमारी सत्यवती, जिन बुद्ध भगवान ने तुम्हारे भाई को आश्रय दिया है, मैंने भी अब उन्हीं की शरण ले ली है। तुम्हें अब कोई डर नहीं है। तुम इस समय शिलाकंदर में बैठ जाओ, मैं जरा यहां वहां चल कर देखूँ, क्या हाल है।'

मूसलाधार पानी बरस रहा था। अंधकार इतना गहरा था कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। कुमार नायकसिंह ने बिजली के प्रकाश में देखा कि मंद्रा पगली के समान चली जा रही है। इसके नेत्र उस गहन अंधकार को भेद कर भिन्नु का अनुसरण कर रहे हैं। नायकसिंह को देखकर उसने पूछा, 'कुमार, भिन्नु कहां गया?'

नायकसिंह ने धीरे से पूछा, 'क्यों?'

मंद्रा—नायकसिंह, तुमने कभी प्यार किया है?

नायकसिंह ने कुछ हँस कर कहा 'मैं समझता हूँ कि प्यार के परिचय देने का न तो यह स्थान है और न यह समय है। जिस

बात को मैंने आज लगभग सात वर्ष से अपने हृदय में छिपा रखा है, उसे अभिनय के अंतिम अंक में प्रगट करना, कहा तक संगत या असंगत—'

मंद्रा—कुमार, मैं तुम्हारे प्रणय या प्यार के योग्य नहीं हूँ। भाई, क्षमा करना। आज मेरा निर्मम पापाग हृदय चूर्ण हो गया है।

मंद्रा अपने आपको भूल गईं। उसने अपने मन्तक को कुमार के वक्षस्थल पर रख दिया। उसके भीगे हुए बालों और वस्त्रों को देखकर नायकसिंह काँप उठे। उन्होंने अकुलाकर कहा, 'कुमारी मंद्रा, तुम शीघ्र ही राजमहल को लौट जाओ।'

'नहीं भाई, मेरे जीवन का भी आज अंतिम अंक है। मैंने जिन्हे अपने बायाँ से विद्ध किया है, अब मैं उन्हीं के चरणों का अनुसरण करूंगी। मेरा संसार और स्वर्ग अब उन्हीं के पदतलों में है।' यह कहते कहते मंद्रा रोने लगी।

कुमार नायकसिंह ने धीरे धीरे कहा, 'अच्छा मंद्रा, जाओ। तुम उन्हें मन्दार पर्वत की दक्षिण कुटीर में पाओगी।'

यह सुनकर मंद्रा उस विषम मार्ग में तेजी से दौड़ पड़ी।

पानी बरस रहा है। चतुर्दशी की पिछली रात है। सत्यवती दबे पैरों कुमार के पास आकर बोली,—'कुमार, यह अभी तुम्हारे पास से कौन चला गया?' सत्यवती भय से काँप रही थी। नायकसिंह ने कहा, 'अंगराज्य की शक्ति मंद्रा।'

सत्यवती—वह कहां गई है ?

नायक—तुम्हारे 'शरणा भाई' की चरणाशरणा में देखो, ऊपर बुद्ध-शक्ति है और नीचे धरातल में राज-शक्ति । यह सब तुम्हारे भाई ही की महिमा है ।

सत्यवती—कुमार, क्या मंत्रा से प्यार करते हो ?

कुमार—ज्ञान पढता है करता हूँ, कितु क्या तुमने हम दोनों की बानचीत सुन ली है ?

सत्यवती ने लजाकर कहा, 'हाँ, सुन ली है, परंतु कुमार, अब तुम क्या करोगे ?'

सती का यह बालिकासुलभ प्रश्न सुनकर नायकसिंह की आँखों में प्रेम के आँसू भर आये । वे बोले, 'करूँगा कुछ नहीं । संन्यास ले लूँगा ।'

सत्यवती—'नहीं । तुम संसार में रहो । यदि कोई तुम से प्यार करता हो ?'

नायकसिंह ने अभिमान के साथ कहा—'तो मैं तुम्हारी सलाह मानने को तैयार हूँ ?'

८

धीरे धीरे बादल फटने लगे और जहाँ तहाँ हजारों लाखों तारे चमकने लगे । पर्वत के एक ओर, एकांत निर्जन वन में एक पुरानी टूटी फूटी कुटीर है । भित्तु इसी कुटीर में पत्तों की शय्या पर सो रहा है । वह अपने बाणविद्ध पैर को एक पत्थर के ऊपर रखे

हुए है और बाईं भुज्ज को तकिया बनाये हुए सो रहा है। पैर से एक एक बूँद रक्त टपक कर पर्णशय्या को रंग रहा है।

अभी सवेरा होने में कुछ विलम्ब है। बहुत हूँढखोज करने के बाद मंद्रा ने कुटीर के द्वार पर आकर देखा कि भिज्जु नीद में अचेत पड़ा है।

मंद्रा पैरों के पास जाकर बैठ गई। उसने देखा कि तीक्ष्ण बाण मास के भीतर चला गया है। इससे उसे अपार कष्ट हुआ। उसने अपने अंचल से एक प्रकार के वृक्ष की पत्ती निकाल कर चुटकी से मसली और उसे घाव पर लगा दिया। इसके बाद वह अपने सुंदर केशों को तलवार की धार से काट काट कर उस पर लगाने लगी और अंत में उसने अपने रेशमी ओढ़ने को फाड़ कर तलुए से लेकर घुटने तक के भाग को खूब कसकर बाँध दिया। आज भिज्जु के चरणातल का स्पर्श करके मंद्रा ने अपने आपको परम भाग्यवती समझा। इस समय उसके प्रेम का प्रवाह अरोक था। अपने संकल्पित स्वामी के चरणों का चुम्बन करके वह आँसू बहाने लगी। इसी समय भिज्जु ने आँखें खोल कर पूछा, 'तुम कौन हो ?'

मंद्रा—देव, मैं आपके चरणों की दासी हूँ।

भिज्जु—(विस्मित होकर) क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ?

मंद्रा—नाथ, यह स्वप्न नहीं, सत्य है। तुम मेरे जीवन के देवता हो। तुम्हारे चरण को विद्ध करके मैं आत्मबलि दे चुकी हूँ।

मंद्रा का यह सब से पहला प्यार या अनुराग था । इस समय उसके नेत्र पृथ्वी के प्रत्येक पदार्थ को प्रेममय और करुणामय देख रहे थे ।

भिन्नु उठकर बैठ गया और बोला—‘मंद्रा, मैं एक साधारण शरीरधारी हूँ, देव नहीं । मैं मनुष्य हूँ, किंतु संन्यासी हो गया हूँ, इसलिए संसार मेरे लिए निःसार और शून्य है । मेरा मार्ग दूसरा है और तुम्हारा दूसरा । तुम संसारमार्ग में ही रहो और अपने सुयश से जगत को उज्ज्वल करो । कभी अक्सर आवेगा, तो मैं तुम्हारे यश को देख जाऊंगा । मंद्रा, तुम्हारे हृदय में जिस असीम करुणा का उद्गम हुआ है, मैं चाहता हूँ वह अंगराज में शतसहस्र धाराओं के रूप में बहे और सब के लिए शान्तिदायिनी बने ।’

मंद्रा ने हाथ जोड़ कर कहा, ‘जीवननाथ, आप संसार को छोड़कर न जावे । याद कीजिए, आप प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं ।

भिन्नु—कौनसी प्रतिज्ञा ? मुझे तो याद नहीं आती ।

मंद्रा—देव, उस दिन आपने स्वीकार किया था कि मैं आत्मबलि देकर अंगराज्य में करुणा का संचार करूंगा । अब आप उसी सत्यपाश में बँधे रहो । भिन्नु महाशय, संसार में ही रहो, इसे मत छोड़ो । आपको देखकर मैं सीखूंगी और आपको अपने हृदयमंदिर में विराजमान कर मैं आपकी पूजा करूंगी । मुझे अब अपने धर्म की दीक्षा दो । भिन्नुराज, प्रतीत होता है कि बौद्ध-धर्म बहुत ही अच्छा धर्म है ।

भिक्षु—कुमारी, क्या तुम मुझे संसारगृह में रखने के लिए तैयार हो ?

मंद्रा—सब तरह से । भिक्षु महोदय, अब मेरे हृदय के टुकड़े करके मत जाओ । मैं अपने प्राणों को तुम पर निछावर कर चुकी हूँ ।

उस भुवनमोहन मुख से विपादमयी वाणी सुनकर भिक्षु उठ खड़ा हुआ । अपने पैरों में पड़ी हुई उस राजकुमारी को वह अपनी शक्तिशालिनी भुजाओं से उठा कर कुटीर के बाहर ले आया ।

पूर्वाकाश से उषा की किरणों उन दोनों के मुख पर पड़ कर एक अपूर्व चित्र की रचना करने लगीं ।

बौद्ध भिक्षु ने मंद्रा के निष्कलंक और पवित्र मुख पर अपने दोनों नेत्र स्थापित करके कहा 'प्रेममयी, तुम इतनी व्याकुल क्यों होती हो ? जब महादेव जैसे तपस्वी भी इस माया के मान की रक्षा करने में संसारी हो गये हैं, तब मैं किस खेत की मूली हूँ ? कुमारी, मैं हिंदू क्षत्रिय हूँ । तंत्र का कलंक और जीवहत्या दूर करने के लिए बौद्ध धर्म की सृष्टि हुई है । वस्तुतः बौद्ध धर्म हिंदू धर्म से पृथक् नहीं है, और मैं बौद्ध होकर भी हिंदू हूँ । प्रिये, तुम्हारे पाणिग्रहण की अभिलाषा से मैंने लगभग एक वर्ष से मिथिला का सिंहासन छोड़ रखा है । भिक्षुवेप में अपने को छिपाये हुए

यह शरणासिंह जंगल और पहाड़ों में रह कर और नगरों में घूम घूम कर जिस रत्न को ढूँढ रहा था, वह आज इसे मिल गया है ।

मंद्रा का हृदय उछलने लगा । इस समय उसका प्रत्येक रक्तबिन्दु आनन्द से नाच रहा था । उसने अपने प्रेमपूर्ण नेत्रों को शरणा की ओर फिराकर हँसी में कहा, 'मैं तो पहले ही समझ गई थी कि तुम कोई ढोंगी तपस्वी हो ।'

शरणासिंह—और इसी लिए तुमने मुझे बाणविद्ध करके स्वयंवर रचने की यह अद्भुत युक्ति सोची थी !

मंद्रा को इसका कोई उत्तर न सूझा । लज्जित होकर वह वहाँ से तत्काल ही भाग गई ।

कुणाल

प्रियदर्शी महाराजा अशोक के पुत्र का नाम कुणाल था । कहते हैं, उसके नेत्र कुणाल या राजहंस के नेत्रों के समान सुंदर थे । इसी लिये पिता ने उसका प्यार का नाम कुणाल रखा था । उसे जो देखता था, वही प्यार करता था । महाराज ने अपने इस मुकुल के लिये एक और मुकुल तलाश किया । इस अनुपम जोड़ी को देखकर महाराज की सारी चिताएँ दूर हो जाती थीं और उनका हृदय आनंदसागर में लहराने लगता था । बहू का नाम था कांचन । कांचन अपने छोटे से स्वामी के साथ हँसती खेलती, लड़ती भगडती, और रुठती मचलती हुई राजप्रासाद को संतत आनंदपूर्णा बनाए रखती थी । इस तरह बहू अपने नवजीवन के मधुर दिवसों को फूल की पंखुणियों के समान धीरे धीरे विकसित करती हुई आगे बढ़ने लगी । कुछ ही दिनों में ये दोनों मुकुल अच्छी तरह खिल उठे । सुंदर कुणाल और भी सुंदर दीखने लगा । उसके शरीर में नवयौवन ने प्रकट

होकर मानो मणि-काँचन का संयोग कर दिया ।

राजकुमार को युवराजपद मिल चुका था ।

राजधानी के समीप 'मुशय' नाम का एक प्रसिद्ध विहार था । एक दिन वहाँ के प्रधान स्थविर ने युवराज को एकांत में बुलाकर कहा—'वत्स, तुम्हारे ये सुंदर नेत्र आगे नष्ट हो जाने हैं; इन्हें स्थिर मत समझना । नेत्र बहुत ही चंचल होते हैं । खबरदार, कहीं इनकी चंचलता के वशीभूत हुए तो—इनमें आस्था-रखना अच्छा नहीं । अनास्था—विरागता ही सुख का कारण है ।'

* * * *

वसंत आ गया है । मलय-पवन घर घर में जाकर उसके आगमन की सूचना दे रहा है । वृक्ष, लता, पुष्प आदि सब ही आनंदमग्न दीखते हैं । जहाँ तहाँ उत्सवों की धूम है । वृक्ष मौन गए; फूल खिल उठे और कोयलें पंचम स्वर से गाने लगीं ।

आज वसंत का उत्सव है । सारा नगर इस उत्सव में उन्मत्त हो रहा है । उद्यान में वसंतोत्सव का नाटक खेला गया । प्रधान नायक का पार्ट कुणाल ने लिया । उसके नाट्यकौशल को देख दर्शक-गण चित्रलिखित से हो रहे ।

उत्सव की समाप्ति पर सुग्ध नर-नारी अपने अपने घर लौट आए; रंगालय में यवनिका पड़ गई; उद्यान के दीपक निम्ननिम्न लगे ।

राजान्तःपुर की सभी स्त्रियाँ आज मुग्ध हो रही थीं। उनमें से कोई तो उत्सव की मधुरिमा पर मुग्ध थी, कोई वहाँ के नाट्यकौशल पर और कोई पात्रों के कण्ठमाधुर्य पर; किंतु एक किसी और ही वस्तु पर मुग्ध थी और वह था कुणाल का सुंदर मुख। यह मुख-मुग्धा युवती महाराज अशोक की दूसरी महारानी तिष्यरत्ना थी !

सब लोग अपने अपने घर आ गए; परंतु मुग्धा न आई। वह अपने शरीर को वसंत की किल्लोलों में डूबता, उतराता हुआ छोड़कर, फूलों की सुगंधि और चंद्रमा की चाँदनी में पागल होकर राजमहल के बाहर खड़ी हो रही।

कुणाल घर आ रहा था। राजमहिषी मार्ग रोककर खड़ी हो गई। कुणाल अपनी विमाता के आवेशपूर्ण नेत्रों की ओर देखकर काँप गया।

वह आँखें नीची करके खड़ा रहा—ऊपर को सिर न उठा सका।

इस मूक अभिनय का पर्दा उठते न देख तिष्यरत्ना मन मार कर अपने महल में चली गई।

तक्षशिला के राजा कुंजरकर्ण पर एक लड़ाई का प्रसंग आ पड़ा। उसने सहायता के लिए अशोक के पास आमंत्रण भेजा। महाराज अशोक ने इस कार्य के लिए राजकुमार कुणाल को चुना।

कुणाल सेनापति बन कर तक्षशिला जा पहुँचा । राजा कुंजरकर्ण ने उसे अपने प्रासाद में ठहरा कर उसका स्नेहपूर्वक अतिथि-सत्कार किया । कुणाल कुछ समय के लिये वहीं रह गया ।

* * * *

इधर महाराज अशोक एकाएक बीमार हो गये । बीमारी ऐसी वैसी न थी, बड़े बड़े वैद्यों ने जवाब दे दिया । जीवन-प्रदीप के शीघ्र बुझ जाने की आशंका से महाराज अपने उत्तराधिकारी के विषय में चिंता करने लगे । उन्होंने कहा—‘कुणाल सब प्रकार से योग्य है, वही मेरा छत्र ग्रहण करेगा । अच्छा, उसे शीघ्र बुलाने का प्रबन्ध किया जाय ।’

यह सुनकर रानी ने अपने मन-ही-मन निश्चय किया—यदि कुणाल राजा हो गया तो मैं अपने अपमान का बदला कैसे चुकाऊँगी—मेरा तो सर्वनाश हो जायगा ! नहीं, मैं उसे कभी राजा न बनने दूँगी । इसके बाद वह बोली :—

‘नहीं, कुमार को बुलाने की आवश्यकता नहीं है । आपका रोग शीघ्र दूर हो जायगा । मैं स्वयं इसका उपाय करती हूँ ।’

महिषी के वचनों से महाराज प्रसन्न हो गए । उन्हें अपने जीवन की आशा बँध गई ।

रानी ने अपने हाथों एक औषध तैयार की । उससे महाराज का रोग चला गया; वे बच गये और कृतज्ञता की दृष्टि से रानी के मुँह की ओर देखने लगे ।

स्त्री के चंचल नेत्रों में कुटिल हँसी की रेखा दौड़ गई। वह बोली—‘महाराज, आपका रोग चला गया, अब मेरी एक इच्छा पूरी कीजिए।’

‘अवश्य करूँगा। कहो, तुम क्या चाहती हो?’

‘मैं सात दिन के लिये महाराज के राज्य पर शासन करना चाहती हूँ।’

‘अच्छा, सहर्ष स्वीकार है।’

राजसिंहासन पर बैठते ही महिषी ने आज्ञा दी—

‘तक्षशिला को इसी समय दूत पठाया जाय। कुणाल एक बड़े भारी अपराध में अपराधी हुआ है। राजा कुंजरकर्ण के पास पत्र भेजा जाय कि अपराधी कुणाल के नेत्र निकलवा लिये जायँ और उसे अंधा कर देश से निकाल दिया जाय।’

पत्र महाराज अशोक की तरफ से लिखा गया। उस पर उनकी मुहर भी लगा दी गई।

३

कुंजरकर्ण ने पत्र पढ़ा और कुणाल को भी उसका दारुण संवाद सुनाया। कुणाल ने कहा—‘पूज्य पिता की आज्ञा—राजा की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है। मैं आज्ञापालन करने के लिये तैयार हूँ, परंतु एक प्रार्थना है, आज्ञापालन होने के पहले इमका संवाद देवी के कानों तक किसी तरह न पहुँचने पावे।’

उस समय देवी कांचन युवराज के माथ ही तक्षशिला के राजप्रासाद में उपस्थित थी ।

ऐसा ही हुआ । देवी को मालूम न होने पाया और कुणाल के आँसू-भरे नेत्रों की पुतलियाँ निकाल ली गई ।

देवी कांचन कुछ कहने के लिये कुणाल के कमरे में आ रही थी । जीने पर चढ़ते समय उसका पैर फिसल गया, मोने का नूपुर गिर गया , चंचल हवा के झोंके से गुलाबी अंचल उड़ पड़ा और शिथिल कबरी में से फूलों की माला खिसक गई ।

‘स्वामिन् स्वामिन्, देखो देखो—’

इसके उत्तर में कुमार ने ज्यों ही देवी की ओर मुँह करके कहा —‘क्या है देवी !’ त्यों ही मालूम हुआ कि देवी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी है ।

कुणाल ने कुंजरकर्ण को कहला भेजा ‘देवी की मूर्च्छा दूर होने पर महाराज की दूसरी आज्ञा का पालन करूँगा ।’

कुंजरकर्ण कुणाल को देखने के लिये आए थे । यह करुण दृश्य देखकर वे आँखों में आँसू भरे हुए ही वहाँ से लौट गये ।

सारा दिन और सारी रात इसी प्रकार व्यतीत हुई; सबेरे देवी की मूर्च्छा दूर गई ।

—‘स्वामिन्, चलो, हम इसी समय चले जावें । महाराज की दूसरी आज्ञा का पालन करने में अब विलम्ब न करना चाहिए ।’

देखते देखते दीप बुझ गए । कोलाहल बंद हो गया । मारी नगरी में सन्नाटा छा गया ।

उस निस्तब्ध नगरी के मिर पर शुभ्र चंद्र उदित हो गया था । हरे हरे सघन कुंजों के बीच में चाँदनी से धोई हुई धवल सौधावली चुपचाप खड़ी थी । निद्रा के साम्राज्य में सब सो रहे थे ।

हस्तिशाला के पहरेदार की आँखें भपकने लगी, कितु सो जाने में उसकी कुशल नहीं है । उसने निद्रियाने से डर कर भिखारी से कहा—‘भाई, जरा अपनी वीणा की एक तान तो सुना दो।’

भिखारी की वीणा का सुर रात्रि की निस्तब्धता को भेद दूर दूर तक लहराने लगा—अंधकार में करुणा वायु के साथ क्रन्दन करता हुआ वह बहने लगा ।

महाराज सुखशय्या पर सो रहे थे । वीणा के उस करुणा-स्वर से वे जाग उठे । उन्होंने मन-ही-मन कहा—‘हो न हो यह चिर-परिचित स्वर है ! यह वीणा कौन बजा रहा है ! इसके बाद उनसे न रहा गया । वे तत्काल उठ बैठे और पागल के समान दौड़ कर बाहर आ गए ।

*

*

*

*

पुत्र पिता के हृदय से लग गया । महाराज अशोक को चिर-विरहित पुत्र के सुखस्पर्श से रोमांच हो आया ।

‘ऐसे सुंदर नेत्र जिसने नष्ट किये हैं, क्या वह अपने नेत्र अक्षत रखकर जीवित रह सकता है ?’ यह कहते कहते महाराज का कण्ठ क्रोध से रुँध गया ।

कुणाल ने मधुर हँसी में कहा—‘मेरे नेत्रों को निकलवा कर यदि माता को संतोष हुआ है, तो उनके उस संतोष से ही मैं फिर नेत्र पा लूँगा ।’

उसी समय कुणाल को नेत्र प्राप्त हो गए ।

इसके बाद युवराज कुणाल का धूमधाम से राज्याभिषेक किया गया । राजछत्र धारण करके वे सागरात पृथ्वी पर शासन करने लगे ।

पं० विनोदशंकर व्यास

जीवन-परिचय

व्यास जी का जन्म संवत् ११६० वि० को हुआ । इन्हे शिक्षा इन्टेन्स तक भी पूरी न मिल सकी । स्कूल की पढ़ाई में इनका चित्त न लगता था । स्कूली समय और क़िताबों के बंधेज में रहना इनकी प्रकृति ने स्वीकार न किया । इनके कुटुम्बी इसी कारण इनसे खिंचे रहते थे । पर कुछ समय बाद जब व्यास जी ने साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश कर, अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया तब इनके मित्र और कुटुम्बी आश्चर्य में पड़ गए और उनकी पहली विरक्ति अनुरक्ति में बदल गई ।

व्यास जी की कहानियाँ भावप्रधान होती हैं । उनके करुण-चित्र बड़े ही मर्मस्पर्शी होते हैं । उनकी भाषा-शैली बड़ी सरल, पर खरी चोट करने वाली होती है । सुख और समृद्धि का जीवन व्यतीत करते हुए दरिद्रता के भीषण नाटकों का सजीव चित्र दिखाना व्यास जी की विस्तृत और तीक्ष्ण अनुभूतियों का परिचायक है ।

उनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं—नवपल्लव, तूलिका, अशांत, भूली बात, धूपदीप, प्रेम-कहानी, विदेशी दैनिक पत्र, ४१ कहानियाँ और कहानी-कला ।

?

हम मरने से नहीं डरते, किंतु इस प्रकार का मरना वैसा ही है, जैसा वधिक द्वारा जंगले वाली गाडी में पकड़े हुए कुत्तों का ।

यह तुम्हारी भूल है ।

मेरी भूल । कदापि नहीं, देखो—हम लोग भी कुत्तों ही की तरह जेल में बंद हैं । जब वधिक रस्ती का फंदा बनाकर सड़क पर भागते हुए कुत्ते की ओर उसे फेरता है, तब देखने वालों को तरस आता है और वे तालियाँ पीटकर 'धत्-धत्' चिल्लाते हुए उसे उस फंदे से बचाना चाहते हैं । ठीक उसी तरह, जब हम लोग गिरफ्तार होते हैं, तब दर्शक 'वन्दे मातरम् ! भारत माता की जय !!' की पुकार मचाया करते हैं । यह ठीक वैसा ही है ।

कानून भंग करने, जेल जाने और असहयोग करने के अतिरिक्त देश के पास और कोई साधन भी तो नहीं है ।

गुलामी का बदला—गुलामी का बदला—दौत पीस कर कहते-कहते उसका मुँह रक्त हो गया, सिर के बाल खड़े हो गये, भवे तन गई और उन खूनी आँखों में क्रांति की ज्वाला भड़कने लगी ।

मैं आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा ।

उसने फिर उसी स्वर में कहा—संसार के इतिहास में कोई भी ऐसा देश नहीं, जो युद्ध के बिना स्वतंत्र हुआ हो । स्वाधीनता का मूल्य मृत्यु है । सपना देखकर कोई मुक्त नहीं हो सकता । आदर्श सिद्धांत लेकर सब महात्मा नहीं बन सकते । मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता, मैं तो युद्ध में विश्वास करता हूँ । मैं कुत्तों की मौत नहीं चाहता, मैं योद्धा की तरह जूमना जानता हूँ ।

मैंने बड़ा साहस करके कहा—कितु मैं तुम्हारी इन बातों में विश्वास नहीं करता, यह सब असम्भव है ।

उसने पूछा—बिलकुल नहीं ?

मैंने कहा—नहीं ।

न-जाने क्या समझ कर वह चुप हो गया, फिर एक शब्द भी न बोला ।

संध्या अस्ताचल पर सो रही थी । हम दोनों जेल की चारदीवारी के भीतर टहल रहे थे । वह पेड़ों के घने पल्लवों में अरुण किरणों का खेल देखने लगा । उसे लाल रंग अधिक पसंद था, क्योंकि वह क्रांति का उपासक था ।

मेरी दृष्टि बूढ़े जमादार पर पड़ी। वह हमी लोगों की ओर आ रहा था। उसने पास आकर हम लोगों की ओर देखते हुए पूछा—क्या, भागने की तरकीब लगा रहे हो ?

मैंने कुछ उत्तर न दिया; क्योंकि उसने अपनी पतली बेत हिलाते हुए कई बार मुझ पर अपशब्दों का प्रहार किया था; किंतु मेरा साथी यह न सह सका। उसने फौरन उत्तर दिया— जिस दिन भागना होगा, उस दिन तुम से पूछ लूँगा।

जमादार मन-ही-मन गुनगुनाता चला गया। हम लोग भी कैदखाने की कोठरी में चले आये। उस दिन उससे और कुछ बात न हुई।

दमन आरंभ हो गया था। असहयोग के दिन थे। जेलों की दशा मवेशीखानों से भी बदतर हो गई थी। खुली सभा में जोशीला भाषण देने के अपराध में मुझे भी छः मास की सज़ा मिली थी। जेल में ही मेरी-उसकी जान-पहचान हुई थी। पहली बार सामना होने पर उसने आँखें गड़ा कर मेरी ओर देखा था; जैसे कोई अपने किसी परिचित को पहचानने की चेष्टा कर रहा हो। कुछ देर बाद मेरे समीप आकर उसने पूछा—कितने दिनों के लिये आये हो ?

मैंने कहा—एक सौ बयासी !

वह मेरी तरफ़ देखता हुआ मुस्कराने लगा। परिचय बढ़ा, घनिष्ठता हो गई।

मेरे-उसके विचारों और सिद्धांतों में बहुत अंतर था; किंतु फिर भी मैं उसकी वीरता का आदर करता था।

दिन पहाड़ हो गये थे।

मैं जेल के कपटों से जब घबरा जाता, तब यही विचार करता कि—हे भगवन्, कब यहाँ से छुटकारा मिलेगा। घर की चिंता थी—बाल-बच्चे भूखों मरते होंगे। क्या करूँ, कोई उपाय नहीं। ऐसी देश-सेवा से क्या लाभ ? यहाँ तो धुल-धुलकर प्राण निकल जायँगे, किंतु हमारे इस जटिल जीवन की समस्याओं को कौन समझेगा ? इस अभागे देश के लिए कितनों ने प्राण निछावर कर दिये; मगर आज उनके नाम तक लोग भूल बैठे हैं। यह सब व्यर्थ है, अभी इस देश के लिए वह समय नहीं आया है।

और, जब उसकी ओर देखता, तब हृदय में साहस उमड़ पड़ता। वह हँसते-हँसते प्राण तक उत्सर्ग कर देने में नहीं हिचकता। उसे किसी बात की चिंता ही न थी। वह इतनी लापरवाही से जेल में घूमता, हँसता और बोलता, मानों जेल ही में उसका घर हो। उसकी इस दृढ़ता पर मैं मुग्ध था। अपने हृदय को मैं कभी कभी टटोलने लगता। मैं सिद्धान्तवादी था। 'अहिंसा परमो धर्मः'—मेरा आदर्श था। मुझ जैसे लोगों को वह मन में कायर समझता था।

हमें आपस में बातें करने का अवसर कम मिलता था, क्योंकि हम लोग क्वैदी थे—गुलाम थे—राजद्रोही थे ! वह अपने हृदय को खोलकर मुझे नहीं दिखा सकता था, और मैं भी अपनी

बात उससे नहीं कह पाता था । पहरा बडा कड़ा था । जेल के निरंकुश शासन की जंजीरों मे हम जकड़े हुए थे । फिर भी हम एक दूसरे को देखकर सब बातें समझ लेते थे । हमारी भाषा मौन थी ।
इस तरह पाँच महीने समाप्त हुए !

३

मैने पूछा—इस बार जेल से निकलने पर क्या करोगे ?
उसने कहा—डाका—हत्या—पूँजीपतियों का विध्वंस—
गरीबों का राज्य-स्थापन !

मैने पूछा—विवाह नहीं करोगे ?

नहीं ।

क्यों ?

वह एक दृढ बंधन है ।

तुम्हारे घर मे कौन-कौन हैं ?

बूढ़े माँ-बाप और.. ..

और ?—

कोई नहीं, बड़ा भाई काला-पानी भेज दिया गया !

‘ ’

‘

तब माँ-बाप का निर्वाह कैसे होता है ? घर की कुछ सम्पत्ति होगी ?

राजपूताने में जागीर थी, वह अब जब्त हो गई है।

उनके प्रति भी तुम्हें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये।

उनकी आज्ञा और आशीर्वाद से ही तो मैं यह सब कर रहा हूँ।

क्या तुम्हारे इस कार्य से वे हिचकते नहीं ?

नहीं। दुःख हम लोगों का सहचर है, और मृत्यु ही हमारा जीवन।

विचारों की इस भीषणता ने तुम्हारे हृदय को पत्थर बना दिया है !

हो सकता है।

तुमने कभी किसी को प्यार भी नहीं किया ?

यह कैसे समझा ?

तुम्हारी बातों से।

मेरे प्यार में मधुरता नहीं होती, उसमें भी संसार को भस्म कर देने वाली ज्वाला भरी है !

उस दिन बहुत देर तक उससे बातें होती रहीं। मुझे अपना समझ कर उसने अपने प्रेम के सम्बन्ध में भी कुछ मुझ से कहा। वह एक दरिद्र की कन्या के प्यार को हृदय में छिपाये हुए था। उसकी माँ ने उस गरीब बालिका से विवाह करने की अनुमति

भी दे दी थी। लडकी के पिता को भी स्वीकार था, किंतु उसने यह कहकर टाल दिया कि अभी मेरे विवाह का समय नहीं आया है। बालिका की अवस्था इस समय सोलह वर्ष की है; अभी तक वह उसकी प्रतीक्षा में बैठी है।

आगे उसने कहा—देखता हूँ, अविवाहिता रहकर वह अपना जीवन काट देगी। मैं सत्य कहता हूँ, उस पर मेरा पूर्ण विश्वास है। उसमें दैवी शक्ति है। वह सदैव मुझे उत्साहित करती रहती है। वह वीर बाला है। एक दिन उसने कहा था—मरने के लिए ही जन्म हुआ है—सदैव कोई जीवित नहीं रहेगा—फिर मृत्यु से भय क्यों और कैसा? उसकी यह बात मेरे हृदय पर अंकित है, मैं आजन्म इसे न भूलूँगा।

मैं एकाग्र मन से उसकी बातें सुन रहा था।

इस घटना के तीन दिन बाद, उसकी बदली दूसरी जेल में हो गई—वह मुझ से अलग हो गया।

उसके चले जाने पर मेरे लिए जेल सूनी हो गई। जिस दिन उसकी बदली हुई थी, उस दिन चलते समय मेरी ओर देखते हुए उसने कहा था—जेल से छूटने पर एक बार तुम से भेंट करूँगा। आशा है, तुम मुझे न भूलोगे।

मैंने भी बड़ी सहृदयता से कहा था—तुम भूलने योग्य व्यक्ति नहीं हो।

हथकड़ी-बेड़ियों को खनखनाते हुए—एक बार मुस्करा कर वह मेरी आँखों से ओझल हो गया।

उसके जाने के सातवे दिन बाद, मैं जेल के फाटक के बाहर निकला। कुछ दूर जाकर जेल की ओर उसी तरह देखता जाता, जैसे बन्दूक की आवाज़ सुनकर प्राण के भय से भागता हुआ हिरन कहीं छिपकर अपने शिकारी को देखता जाता है।

छः महीने जेल में काटने के बाद, मुक्त होने की प्रसन्नता से उछलते हुए, दौड़ते हुए, घर आकर देखा, तो ब्रह्मा की सृष्टि ही बदल गई थी। मेरे सामने अंधकार नाचने लगा।

आभूषण और घर का सामान बेचकर मेरी पत्नी ने छः महीने काम चलाया था। मेरे पहुँचने पर घर में भूँजी भोंग भी न थी। बड़े फेर में पडा। सरकारी नौकरी भी नहीं कर सकता था। व्यवसाय के लिये पूँजी न थी। देश-सेवक का भेष बनाकर मैं भटकने लगा। कोई बात तक न पूछता।

दो वर्ष तक उलझनों में ही फँसा रहा। देशभक्ति के भाव दिन प्रति दिन शिथिल होते जा रहे थे।

एक दिन—पता नहीं, कौन-सा दिन था—मैं गृहस्थी का कुछ सामान लेने बाजार जा रहा था। मैं बड़ी जल्दी में था। कारण, जाड़े की रात थी। दुकानें आठ बजे ही बंद हो जाती थीं।

मेरी बगल से घूम कर एक आदमी मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मेरी ओर ध्यान से देखकर उसने कहा—रामनाथ !

उसे पहचानने की चेष्टा करते हुए आश्चर्य से मैंने कहा—
अ...स. .र...सिंह !

उसने कहा—हाँ।

मैने कहा—यह कौन-सा विचित्र वेश बनाया है ? तुम्हें तो पहचानना कठिन है !

कितु तुमने तो पहचान लिया ।

मुझे भी भ्रम हो गया था । जेल से कब आये ?

दो महीने हुए । घर गया, तो माँ तड़प-तड़प कर मर गई थी । बूढ़ा बाप पागलखाने भेज दिया गया था । वहाँ जाकर उनसे भेंट की थी । वे मुझे पहचान न सके । मैं चला आया । अब अकेला हूँ । इस बार फाँसी है, गिरफ्तार होते ही ।

यह क्या कह रहे हो ? मेरी समझ मे कुछ नहीं आ रहा है !

देखो—वह दो-तीन सी० आई० डी० आ रहे हैं । अच्छा, चला ।

देखते-देखते वह गायब हो गया । मैं भय से कॉप रहा था । उसका चेहरा कितना भयानक हो गया था—ओह !

४

अंधकार था । सुनसान नदी का किनारा साँय-साँय कर रहा था । मैं मानसिक हलचल मे व्यस्त घूम रहा था । अपनी तुलना कर रहा था—अमरसिंह से । ओह ! कैसा वीर-हृदय है ! और एक मैं हूँ, जो अपने सुखों की आशा मे—गृहस्थी की भंभटों मे—पड़ा हुआ मातृभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य भूलता जा रहा हूँ । मन मे तूफान आया—यदि अमरसिंह से भेंट हो जाय—मैं फिर

से उसके साथ.... 'वह प्रायः यही तो टहलने आता है । उससे भेट हो जाय, तो क्या ही अच्छी बात हो ।

मैं जैसे अमरसिंह को खोजता हुआ उसी अंधकार में घूमने लगा । कुछ देर बाद, एक क्षीण कंठ से सुनाई पडा—
अमरसिंह !

मैं चौंक उठा । पूछा—कौन ?

उत्तर न मिला । मैंने कहा—डरो मत, मैं मित्र हूँ । ..

अब एक रमणी सामने आकर देखने लगी । उसने कहा—
मैं बड़ी विपत्ति में हूँ । यदि आपकी अमरसिंह से भेट हो, तो उन्हें मेरे यहाँ भेज दीजिए ।

आपके यहाँ ?—मैंने आश्चर्य से प्रश्न किया—आपका नाम ?

त्रिवेणी । उन्हें आज अवश्य भेज दीजिएगा ।

न-जाने क्यों, उसकी बोली लड़खडा रही थी, और मेरा भी कलेजा धड़क रहा था । 'अच्छा' कहकर मैं कुछ विचार करने लगा । इतने ही में वह खी चली गई ।

मैं नदी-तट पर जाकर बैठ गया । चुपचाप उसके प्रवाह को देखने लगा । अस्पष्ट भावनाओं से मेरा मन चिंतित था । अब मैं अधिक प्रतीक्षा न कर घर लौटने की बात सोचने ही लगा था कि मेरे कंधे पर किसी ने हाथ रक्खा ।

मैंने पूछा—कौन ?

अमर !

तुम्ही को तो खोज रहा था ।

त्रिवेणी के यहाँ भेजने के लिए ?

तुम कैसे जान गये ? मैंने आश्चर्य से पूछा ।

अमरसिंह ने एक भयावन हँसी हँस कर कहा—अपने जीवन-मरण के प्रश्न को मैं न जानूँगा, तो कौन जानेगा ?

मैंने कुतूहल से कहा—क्या ?

उसने कहा—रामनाथ, अच्छा हुआ कि घटना-वश तुम स्वयं इस बात से परिचित हो गये, नहीं तो मैं इस विश्वासघात को न कभी किसी से कहता और न इसे कोई जान पाता ।

विश्वासघात कैसा ?

जिस पर मेरा विश्वास था, उसी त्रिवेणी का यह कुचक्र है । एक दिन मैंने तुम से कहा था कि वह वीर-बाला है, मेरी आराध्य देवी है, मेरे हृदय की शक्ति है, फिर जब वही संसार के प्रलोभनों में फँस कर मेरे जीवन का अंत कर देना चाहती है, तब मैं उसके लिए क्यों लोभ करूँ ?

तुम क्या कह रहे हो अमरसिंह ?

एक सच्ची बात ।

तब तुम न जाओ ।

ऐसा नहीं हो सकता, जाऊँगा और प्राण दूँगा ।

नहीं, तुम मातृभूमि के लिए जीओ—

नहीं भाई, मातृभूमि के लिए मरना होता है ।

किंतु यहाँ तुम भूल कर रहे हो ।

नहीं, रामनाथ, दिल टूट गया है । अब लुक-छिपकर जीवन की रक्षा करने का समय नहीं है । जाता हूँ ।

अमरसिंह को रोकने का मेरा साहस न हुआ । उस अंधकार में जैसे उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं ।

मैं घर लौट आया ।

विधाता

‘चीनी के खिलौने, पैसे मे दो, खेल लो, खिला लो, टूट जायँ तो खा लो—पैसे मे दो ।’

सुरीली आवाज़ मे यह कहता हुआ खिलौनेवाला एक छोटी सी घंटी बजा रहा था ।

उसकी आवाज़ सुनते ही त्रिवेणी बोल उठी—

‘माँ, पैसा दो’ खिलौना लूँगी ।’

‘आज पैसा नहीं है, बेटी ।’

‘एक पैसा, माँ, हाथ जोड़ती हूँ ।’

‘नहीं है । त्रिवेणी, कल ले लेना ।’

त्रिवेणी के मुख पर सन्तोष की झलक दिखलाई दी । उसने खिड़की से पुकार कर कहा—‘ऐ खिलौनेवाले, आज पैसा नहीं है, कल आना ।’

‘चुप रह, ऐसी बात भी कही कही जाती है ?’—उमकी माँ ने गुनगुनाते हुए कहा ।

तीन वर्ष की त्रिवेणी की समझ में न आया । किंतु उसकी माँ अपने जीवन के अभाव का परदा दुनिया के सामने खोलने से हिचकती थी । कारण, ऐसा सूखा विषय केवल लोगों के हँसने के लिए ही होता है ।

और सचमुच—वह खिलोने वाला मुस्कराता हुआ, अपनी घंटी बजाकर, चला गया ।

× × × ×

संध्या हो चली थी ।

लज्जावती रसोईघर में भोजन बना रही थी । दफ्तर से उसके पति के लौटने का समय था । आज घर में कोई सब्जी न थी, पैसे भी न थे । विजयकृष्ण को सूखा भोजन ही मिलेगा । लज्जा रोटी बना रही थी और त्रिवेणी अपने बाबू जी की प्रतीक्षा में थी ।

‘माँ, बड़ी भूख लगी है ।’—कातर वाणी में त्रिवेणी ने कहा ।

बाबू जी को आने दो, उन्हीं के साथ भोजन करना, अब आते ही होंगे ।’—लज्जा ने समझाते हुए कहा । कारण, एक ही थाली में त्रिवेणी और विजयकृष्ण साथ बैठकर नित्य भोजन करते थे और उन दोनों के भोजन कर लेने पर उसी थाली में लज्जावती,

टुकड़ों पर जीने वाले अपने पेट की ज्वाला को शांत करती थी ।
जूठन ही उसका सोहाग था ।

लज्जावती ने दीपक जलाया । त्रिवेणी ने आँख बंद कर
दीपक को नमस्कार किया, क्योंकि उसकी माता ने प्रतिदिन उसे
ऐसा करना सिखाया था ।

द्वार पर खटका हुआ । विजय दिन भर का थका लौटा था ।
त्रिवेणी ने उल्ललते हुए कहा—‘मॉ, बाबू जी आ गये ।’

विजय कमरे के कोने में अपना पुराना छाता रखकर खँटी
पर कुरता और टोपी टाँग रहा था ।

लज्जा ने पूछा—‘महीने का वेतन आज मिला न ?’

‘नहीं मिला, कल बँटेगा । साहब ने बिल पास कर दिया
है ।’—हताश स्वर में विजयकृष्ण ने कहा ।

लज्जावती चिंतित भाव से थाली परोसने लगी । भोजन
करते समय, सूखी रोटी और दाल की कटोरी की ओर देखकर
विजय न जाने क्या सोच रहा था । सोचने दो, क्योंकि चिता ही
दरिद्रों का जीवन है और आशा ही उनका प्राण ।

× × × ×

किसी तरह दिन कट रहे थे ।

रात्रि का समय था । त्रिवेणी सो गई थी, लज्जा बैठी थी ।

‘देखता हूँ, इस नौकरी का भी कोई ठिकाना नहीं ।’

—गम्भीर आकृति बनाते हुए विजयकृष्ण ने कहा—

‘क्यों ! क्या कोई नई बात है ?’—लज्जावती ने अपनी झुकी हुई आँखें ऊपर उठाकर, एक बार विजय की ओर देखते हुए, पूछा—

‘बड़ा माहव मुझ से खिचा रहता है । मेरे प्रति उसकी आँखे चढ़ी रहती है ।’

‘किस लिए ?’

‘हो सकता है, मेरी निरीहता ही इसका कारण हो ।’

लज्जा चुप थी ।

‘पंद्रह रुपये मासिक पर दिन भर परिश्रम करना पड़ता है । इतने पर भी.’

‘ओह, बड़ा भयानक समय आ गया है !’—लज्जावती ने दुःख की एक लम्बी साँस खींचते हुए कहा ।

‘मकानवाले का दो मास का किराया बाकी है, इस वार वह हरगिज़ न मानेगा ।’

‘किराया न मिलने पर वह बड़ी आफत मचावेगा ।’—लज्जा ने भयभीत होकर कहा ।

‘क्या करूँ ? काश, जान देकर भी इस जीवन से छुटकारा हो पाता !’

‘ऐसा सोचना व्यर्थ है । घबराने से क्या लाभ ? कभी दिन फिरेगे ही ।’

‘कल रविवार है, छुट्टी का दिन है, एक जगह दूकान पर चिट्ठी-पत्री लिखने का काम है। पाँच रुपये महीना देने को कहता था। घंटे दो घंटे उसका काम करना पड़ेगा। मैं आठ मॉगता था। अब सोचता हूँ, कल उससे मिलकर स्वीकार ही कर लूँ। दफ्तर से लौटने पर उसके यहाँ जाया करूँगा’,—कहते हुए विजयकृष्ण के हृदय में उत्साह की एक हल्की रेखा दौड़ गई।

‘जैसा ठीक समझो।’—कहकर लज्जा विचार में पड़ गई। वह जानती थी कि विजय का स्वास्थ्य परिश्रम करने से दिन प्रति दिन बिगड़ता जा रहा है।

किंतु प्रश्न था रोटी का।

× × × ×

दिन, सप्ताह और महीने उलझते चले गये।

विजय प्रतिदिन दफ्तर जाता। वहाँ वह बहुत कम बोलता। उसकी इस नीरसता पर दफ्तर के कर्मचारी उससे व्यंग्य करते।

उसका पीला चेहरा और धँसी हुई आँखें लोगों को विनोद करने के लिए उकसाती थीं। किंतु वह चुपचाप इन बातों को अनसुनी कर जाता, और कभी उत्तर न देता। इस पर भी सब उससे खिंचे रहते थे।

विजय के जीवन में आज एक अनहोनी घटना हुई। वह कुछ समझ न सका। मार्ग में उसके पैर आगे न पड़ते। उसकी

आँखों के सामने चिनगारियाँ भलमलाने लगी । मुझ से क्या अपराध हुआ ?—कई बार उसने मन ही में प्रश्न किया ।

घर से दफ्तर जाते समय बिल्ली ने रास्ता काटा था । आगे चलकर खाली घडा दिखाई पडा था । इसी लिए तो सब अपशकुनों ने मिलकर आज उसके भाग्य का फैसला कर दिया था ।

‘साहब बडा अत्याचारी है । क्या गरीबों का पेट काटने के लिए ही पूँजीपतियों का प्रादुर्भाव हुआ है ? नाश हो इनका... वह कौन-सा...दिन होगा जब रुपयों का अस्तित्व संसार से मिटेगा ? जब भूखा मनुष्य दूसरे के सामने हाथ न फैलावेगा ?’—सोचते हुए विजय का माथा ठनक गया । वह मार्ग में गिरते-गिरते सन्धला ।

सहसा उसने आँखें उठाकर देखा, वह अपने घर के सामने आ गया था, बड़ी कठिनाई से घर में घुसा । कमरे में आकर धम से बैठ गया ।

लज्जावती ने धबकाकर पूछा—‘तबीयत कैसी है ?’

‘जो कहा था वही हुआ ।’

‘क्या हुआ ?’

‘नौकरी छूट गई । साहब ने जवाब दे दिया ।’—कहते-कहते उसकी आँखें छलछलाने लगी ।

विजय की दशा पर लज्जा को रोना आ गया । उसकी आँखें

बरस पड़ीं। उन दोनों को रोते देखकर त्रिवेणी भी सिसकने लगी।

संध्या की मलिन छाया में तीनों बैठे रोते थे। इसके बाद शांत होकर विजय ने अपनी आँखे पोंछीं, लज्जावती ने अपनी और त्रिवेणी की—

क्योंकि संसार में एक और बड़ी शक्ति है, जो शासन करने वाली इन सब चीजों से कहीं ऊँची है—जिसके भरोसे बैठा हुआ मनुष्य आँख फाड़कर अपने भाग्य की रेखा को देखा करता है।

विद्रोही

‘मान जाओ, यह कार्य तुम्हारे उपयुक्त न होगा।’

‘चुप रहो—तुम क्या जानो।’

‘इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है।’

‘बहुत दिनों से धधकती हुई ज्वाला आज शांत होगी।’
—शक्तिसिंह ने, एक लम्बी साँस खींचते हुए, अपनी स्त्री की ओर देखा।

‘.....’

‘.....’

‘कलंक लगेगा, अपराध होगा।’

‘अपमान का बदला लूँगा। प्रताप के गर्व को मिट्टी में मिलाऊँगा। आज मैं विजयी होऊँगा।’—बड़ी दृढ़ता से कहकर

शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार से देखा—मुगलसेना के छरेरे सिपाही अपने अपने घोड़ों की परीक्षा ले रहे थे। धूल उड़ रही थी। बड़े साहस से सब एक दूसरे को उत्साहित कर रहे थे।

‘निश्चय महाराना की हार होगी। बाईस हजार राजपूतों को मुगल-सेना सूखे डंठल की भाँति काटकर गिरा देगी।’—साहस से शक्तिसिंह ने कहा।

‘भाई पर क्रोध करके, देशद्रोही बनोगे’—कहते कहते उस राजपूत-बाला की आँखों में चिनगारियाँ बरसने लगीं।

शक्तिसिंह अपराधी की नाई विचार करने लगा। जलन का उन्माद उसकी नस-नस में दौड़ रहा था। प्रताप के प्राण लेकर ही छोड़ूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी। नादान-दिल किसी तरह न मानेगा। उसे कौन समझा सकता था ?

रणाभेरी बजी।

कोलाहल मचा। मुगल-सैनिक मैदान में जुटने लगे। पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा। बिजली की भाँति तलवारें चमक रही थीं। उस दिन सब में उत्साह था। युद्ध के लिए भुजाएँ फड़कने लगीं।

शक्तिसिंह ने घोड़े की लगाम पकड़ कर कहा—आज अन्तिम निर्णय है, मरूँगा या मारकर ही लौटूँगा !

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहिनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—ईश्वर सद्बुद्धि दे, यही प्रार्थना है।

२

एक महत्त्वपूर्णा अभिमान के विध्वंस करने की तैयारी थी। प्रकृति कॉप उठी। घोड़ों और हाथियों के चीत्कार से आकाश थरथरा उठा। बरसाती हवा के थपेड़ों से जङ्गल के वृक्ष रणा-नाद करते हुए झूमने लगे। पशु-पक्षी भय से त्रस्त होकर आश्रय ढूँढने लगे। बड़ा विकट समय था।

उस भयानक मैदान में राजपूतसेना मोर्चाबन्दी कर रही थी। हल्दीघाटी की ऊँची चोटियों पर भील लोग धनुष चढाये उन्मत्त के समान खड़े थे।

‘महाराणा की जय !’—शैलमाला से टकराती हुई ध्वनि मुगल-सेना में घुस पड़ी। युद्ध आरंभ हुआ। भैरव रणाचंडी ने प्रलय का राग छेड़ा। मनुष्य हिंस्र जन्तुओं की भाँति अपने-अपने लक्ष्य पर टूट पड़े। सैनिकों के निडर घोड़े हवा में उड़ने लगे। तलवारें बजने लगीं। पर्वतों के शिखरों से विपैले बाण मुगल-सेना पर बरसने लगे। सूखी हल्दीघाटी में रक्त की धारा बह निकली।

महाराणा आगे बढ़े। शत्रुसेना का व्यूह टूटकर तितर-

बितर हो गया। दोनों ओर के सैनिक कट-कटकर गिरने लगे। देखते देखते लाशों के ढेर लग गये।

भूरे बादलों को लेकर आँधी आई। सलीम के सैनिकों को बचने का अवकाश मिला। मुगलों की सेना में नया उत्साह भर गया। तोप के गोले उथल-पुथल करने लगे। धाँय-धाँय करती बन्दूक से निकली हुई गोलियाँ उड़ रहीं थीं—ओह ! आज जीवन कितना सस्ता हो गया था !

महाराणा शत्रु-सेना में सिंह की भाँति उन्मत्त होकर घूम रहे थे। जान की बाजी लगी थी। सब तरफ से घिरे थे। हमले पर हमला हो रहा था। प्राण संकट में पड़े थे। बचना कठिन था। सात बार घायल होने पर भी पैर उखड़े नहीं, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था।

मानसिंह की कुमंत्रणा सिद्ध होने वाली थी। ऐसे आपत्ति-काल में वह वीर सरदार सेना-सहित वहाँ कैसे आ पहुँचा ? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी ओर देखा—वीर मन्नाजी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राज-चिह्नों को उतार अपने मस्तक पर रख लिया। राणा ने आश्चर्य और क्रोध से पूछा—‘यह क्या ?’

‘आज मरने के समय एक बार राज-चिह्न धारण करने की इच्छा हुई है।’—हँसकर मन्नाजी ने कहा। राणा ने उस उन्माद-पूर्णा हँसी में अटल धैर्य देखा।

मुगलों की सेना में से शक्तिसिंह इस चालुरी को समझ गया। उसने देखा—घायल प्रताप रणा-क्षेत्र से जीते-जागते निकले जा रहे हैं; और, मुगल वीर मन्नाजी को प्रताप समझकर उधर ही दूट पड़े हैं।

उसी समय मुगल-सरदारों के साथ, महाराणा के पीछे-पीछे शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

३

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतंत्रता की बली-वेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर-मिटने-वाले वीरों ने जीवन का उत्सर्ग कर दिया था। बाईस हजार राजपूत वीरों में से केवल आठ हजार बचे थे।

विद्रोही शक्तिसिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चढ़ा चला जा रहा था। मार्ग में कटे शव पड़े थे—कहीं भुजाएँ शरीर से अलग पड़ी थीं, कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं खून से लथपथ मस्तक भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्तन है!—घड़ी भर में हँसते-बोलते और लड़ते भिड़ते जीवित पुतले कैसे दूट गये? ऐसे अनित्य जीवन पर इतना गर्व!

शक्तिसिंह की आँखें ग्लानि से छलछला पड़ीं।

‘ये सब भी राजपूत थे, मेरी ही जाति का खून इनमें था! हाय रे, मैं! मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ,—क्या सचमुच पूरा हुआ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था। अधम शक्ति! यह तेरे चिर-कलङ्क के लिए

पैशाचिक आयोजन था। तू भूला, पागल। तू प्रताप से बदला लेना चाहता था—उस प्रताप से, जो अपनी स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्म-भूमि की मर्यादा बचाने चला था। वही जन्म-भूमि, जिसके अन्नजल से तेरी नसे फूली-फली हैं। अब भी तो माँ की मर्यादा का ध्यान कर।’

सहसा धॉय-धॉय गोलियों का शब्द हुआ। चौंककर शक्तिसिंह ने देखा—दो मुगल-सरदार प्रताप का पीछा कर रहे हैं। महाराणा का घोड़ा लथ-पथ होकर भूमता हुआ गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज हुई—रुको !

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बन्दूक छुटी, पलक मारते दोनों मुगल-सरदार जहाँ-के-तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा। वे आँखे पूछ रही थीं—क्या मेरे प्राण पाकर तुम निहाल हो जाओगे ? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी प्रतिहिंसा न हुई ?

किंतु यह क्या, शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नत-मस्तक खड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद-प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ !

राणा ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगी। दोनों के हृदय गद्गद् हो गये।

इस शुभ मुहूर्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प-वर्षा की, नदी की कल-कल धाराओं ने स्तुति-गान किया।

प्रताप ने डबडवाई आँखों से देखा—उनका चिर-सहचर प्यारा 'चेतक' दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

शक्तिसिंह ने कहा—भैया ! अब विलम्ब न करे, घोड़ा तैयार है।

राणा शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर, उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

४

श्रावण का महीना था।

दिन-भर की मार-काट के पश्चात्, रात्रि सुन-सान हो गई थी। शिविरों से महिलाओं के रोने की करुण ध्वनि आकर हृदय को दहला रही थी। हजारों सुहागिनियों का सुहाग उजड़ गया था। उन्हें कोई ढाढस बँधाने वाला न था; था तो केवल हाहाकार, चीत्कार, कष्टों का अनन्त पारावार।

शक्तिसिंह भ्रभी तक अपने शिविर में न लौटा था । उसकी पत्नी प्रतीक्षा में विकल थी; उसके हृदय में जीवन की आशा-निराशा क्षण-क्षण उठती और गिरती थी ।

अँधेरी रात में काले बादल आकाश में छा गये थे । एकाएक उस शिविर में शक्तिसिंह ने प्रवेश किया । पत्नी ने कौतूहल से देखा, उनके कपड़े खून से तर थे ।

‘प्रिये !’

‘नाथ !’

‘तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया !’

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

जीवन-परिचय

वियोगी जी का जन्म सन् १९२६ में बिहार के प्रसिद्ध स्थान गथा में हुआ। आपने हिंदी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेज़ी आदि में अच्छी प्रवीणता लाभ की है।

इनकी साहित्यिक प्रगति में 'माधुरी' ने बहुत सहायता की। आप कुशल चित्रकार, भावुक कवि तथा प्रवीण कथालेखक हैं। 'निर्माल्य' 'एकतारा' और 'कल्पना' आपकी काव्यरचनाओं के संग्रह हैं और रेखा में आपकी कहानियों का संग्रह है। आप रवींद्र को अपना काव्यगुरु मानते हैं और उन्हीं के पदचिह्नों पर चल हिंदी में नवीनता का संचार कर रहे हैं।

आपकी रचनाएँ कल्पनाप्रधान हैं और अनुभूति की अभिव्यक्ति से युक्त हैं। इन दोनों के साथ मिलकर भावुकता ने सोने में सुगंध बसा दी है।

आपकी भाषा काव्यमय होती है। कहानियों में भी कविता का रस आ जाता है। काव्यमय वर्णन के परचात् मुख्य दृश्य उपस्थित किया जाता है, जो भावपूर्ण होने के साथ साथ आकस्मिक सा होने के कारण कहानी को भावमय जगत् में पहुँचा देता है।

आपने हाल ही में 'कला का विवेचन' नामक पुस्तक लिख अपनी व्यापक समालोचनशक्ति का परिचय दिया है।

वे बच्चे.... !

जैठ का महीना था । हरिपुर गाँव से बहुत दूर, ऊसर और खेतों के उस पार जो पक्की सड़क गई थी, वहाँ दो तीन छोटी छोटी दूकाने दिन में दीख पड़ती थीं । हरिपुर, सहदेवनगर, जैपुरवा आदि गाँवों को जाने वाले यात्री यहीं 'बस' से उतरते थे और यही कारण था कि यहाँ सत्तू, तम्बाकू, तेल की जलेबियाँ और कचौरियों की दो-तीन दूकाने खुली नज़र आती थी । दूर-दूर से आकर, अपनी छोटी पूँजी के बल पर जीवन-नैया को पार लगाने की हिम्मत रखने वाले, दो-चार देहाती यहाँ दूकान लगाकर बैठा करते थे । मोटर, यहाँ यों भी, प्रायः एक घंटा ठहरती थी और यात्रियों को—दूर जाने वाले ग्रामीण यात्रियों को—कुछ देर ठहरने का अवसर अनायास मिल जाता था ।

एक पक्का कुआँ, और बड़-पीपल की छोटी सी छायादार बारी—बस, यही उस स्थान की रौनक थी, सजावट थी, सुंदरता थी ।

दोपहर को जब आकाश तवा-सा तपता और भूमि भट्टी सी भभकती तब इसी बारी में हरिपुर वगैरह गाँवों की ओर जाने वाले यात्री विश्राम करते या बगल के ताड़ीखाने में जाकर दो चार आने में शिमला, दार्जिलिंग, मंसूरी, उटकमंड का आनंद आसानी से उठाते। ताड़ के दो चार पत्तों से छाया हुआ यह ताड़ीखाना अपने भीतर भिनभिनाती हुई मक्खियों से घिरे रहने वाले ताड़ी के बड़े बड़े मटकों को छिपा कर मानो ताड़ी पीने वाले रसिकों का मन बलपूर्वक हरता था। मिट्टी से भली भांति पुती हुई भूमि पर, टूटे चुक्कड़ों और अधजली बीड़ियों पर, झुंड की झुंड हरी हरी विनोनी मक्खियाँ भिनभिनाया करती थीं।

इस बाज़ार में हरिपुर के दो बच्चे भी आते थे—तेल की जलेबियाँ और कचौरियाँ बेचने। पहले इनका अभागा बाप आता था, पर जब से वह मर गया, अपने पैत्रिक व्यवसाय को उसके बच्चों ने सँभाला। एक बच्चा करीब बारह साल का था और दूसरा छः साल का—दोनों दुर्बल और रोगी, जैसे नंगधड़ंग बच्चे आम तौर पर, आधा पेट खाकर जीवन का दुर्बल भार ढोते हुए, देहातों में और गाँव के खेतों में ढोरों के साथ और शहर की गलियों में ईंट पत्थर चलाते और गालियाँ बकते नज़र आते हैं।

दोनों भाई नित्य दो कोस चलकर आते, और जो कुछ मिलता, ले देकर घर की ओर चले जाते। लकड़ी के एक चौकोर तख्ते में कई खाने बने हुए थे; उनमें बाट, तराजू, जलेबियाँ, कचौरियाँ आदि सामान रक्खा हुआ होता था। ऊपर से एक

अत्यंत गंदा तेल से भरा हुआ कपड़ा ढका होता, जिससे पुराने जले हुए तेल की दुर्गंध सदा निकलती रहती। यही खोन्चा था, जिससे एक परिवार का पालन पोषण होता था। सड़क के किनारे बैठकर दोनों बच्चे अपना सौदा बेचा करते और उससे जो बच जाता उसे लेकर घर की ओर चल पड़ते। भूखे रहने पर भी कभी कचौरियों या जलेबियों पर हाथ न डालते। घर पर बैठी हुई अपनी माँ का स्नेह-मिश्रित भय इन्हे सदा सीधे पथ पर चलने के लिए बाध्य करता। माता का स्नेह इनके नन्हे-नन्हे हृदयों को ताज़ा रखता, इन्हे मुर्झाने से बचाता और उसका भय इन्हे सदा सतर्क रखता। माँ से दूर रहते हुए भी ये बच्चे यही अनुभव करते कि माँ की दो बड़ी बड़ी स्नेहपूर्ण आँखें इन्हे आकाश से, वृक्षों के झुरमुट में से, धूलि के बवंडर के भीतर से, भ्रमाम्भ्रम बरसने वाले काले काले बादलों के भीतर से लगातार देख रही हैं—ये गाँव से दूर, स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि सदा अपनी माता की सतर्क आँखों के पहरे के भीतर ही हैं।

दोनों बच्चे अपनी माँ के दिन-रात, इहलोक-परलोक, साहस-कर्तव्य, हँसी-रदन, सुख-दुख और जीवन और मोह जैसे थे।

२

हाँ, जेठ का महीना था और लू की गर्जना से शून्य भर गया था। जेठ की जलती आँखों के सामने ठहरने का साहस किसे था ? प्राणिमात्र छाया की टोह में व्याकुल थे। अग्नि-

स्नान करके, लंका में रोक रखी जाने वाली वैदेही की तरह, धरणी शुद्ध हो रही थी। हवा के गरम भोकों से कच्ची मडकों की धूलि बवंडर की तरह उड़ती थी। अमृतव्यस्त पंखों वाले पंखी, डालों पर चोंच खोल कर हॉफते, नजर आते थे। आकाश का रंग मटमैला दिखलाई पड़ता था। जेठ के रूप में अपनी तीनों आँखें खोल मानो प्रलयंकर नटराज नृत्य कर रहे हों।

दिन चढ़ रहा था। एक मोटर लारी आई और कुछ देर ठहर कर चली गई। दो चार यात्री उतरें और सीधे पगडंडी की ओर मुड़कर चलते बने। दूसरी लारी आई। इसमें बरात थी। बराती गाते बजाते जा रहे थे। यह रिजर्व गाड़ी थी, फिर भी कुछ देर ठहर गई। बच्चों ने कुछ जलेबियाँ और कचौरियाँ बंची भी—कुछ सौदा हो गया। दिन और चढ़ा। १० का समय हो गया। लू के थपेड़े जोरदार हो गये—बवंडर का जोर बढ़ा। पड़ाव उजाड़ सा हो गया, दूकानदार दोपहर बिताने के लिए घनी बारी की ओर चले। दोनों बच्चों ने भी घर की ओर जाने की तैयारी की। इनकी माँ इधर कई दिनों से रुग्ण थी। अकेली छोड़ ये संध्या तक कहीं नहीं ठहर सकते थे। माँ ने कहा भी था—‘चले आना!’

बड़े बच्चे का नाम, जिसकी आयु १२-१३ साल की थी, जगन था, और छोटे बच्चे का, जो करीब ५-६ साल का था, सुकन। बड़े भाई जगन ने गिन कर पैसे और अधेले अच्छी तरह गॉट में बाँध लिये और चलने की तैयारी की। इनके सहयोगी

दूकानदारों ने इनकी ओर ध्यान भी न दिया । किसी ने मना भी न किया । वहाँ इन गरीब बच्चों का अपना कौन बैठा था जो दया दिखलाता, इन्हें उस तडपती हुई धूप में जाने से रोकता, उस महाकाल के धधकते हुए खप्पर में कूदने से समझाता ? जग्गन ने अपने छोटे भाई के हाथ में एक कचौरा रखकर कहा—‘जल्दी चलो । माँ बाट देखती होगी । खाते खाते चलो—अरे, देखते नहीं...दिन चढ रहा है ।’ लालचाई हुई आँखों से अपने हाथ की लाल-लाल फूली हुई कचौरी को देखते हुए सुक्कन ने सम्मतिसूचक सिर हिला दिया, मानो वह अपने भाई से पाँच कदम आगे चलने को तैयार हो । दोनों सड़क से उतर कर खेतों की मेड़ पर हो लिये । जग्गन के सिर पर भारी खोन्चा था और सुक्कन अपनी लटपटी धोती को संभालता, कचौरी खाता पीछे पीछे चल रहा था । न सिरपर छाता, न पैरों में जूते—उस पर जेठ का महीना और दोपहर का रंगमंच पर प्रवेश ।

दिगंत तक फैले हुए रेगिस्तानी, उजड़े खेत । कहीं हरियाली का नाम नहीं । हवा से उड़ती हुई धूलि का डरावना बवंडर । सिर पर भास्कर तप रहे थे और पैरों के नीचे जल रही थी वह धरित्री जिसे ‘वंदे मातरम्’ गान द्वारा कवि ने ‘सुजला सुफलां, मलयजशीतला, शस्यश्यामला’ आदि कहकर अपने हृदय के पूर्ण आवेग से पुकारा है । वही सजला सुफला उन अनाथ बच्चों के लिए तपते हुए तवे का रूप धारण करके प्रकट हुई ।

जग्गन ने दूर दूर तक नजर दौड़ा कर देखा, न कहीं एक चिड़िया नजर आई और न हरी पत्ती या दूब ही । श्वेत

मिट्टी वाले खेतों पर दिनकर की प्रखर किरणों चमक रही थी और हवा के प्रत्येक भोंके के साथ आग की चिनगारियों की तरह तपी हुई धूलि उड़ उड़ कर उनके वस्त्रहीन दुर्बल शरीर को झुलसा रही थी। खेतों का अंत न था और उन्हें अभी काफी दूर जाना था। खेतों के बाद जगदीशपुर की घनी बारी थी, जहाँ 'पनशाला' भी थी। उसके बाद फिर सहदेवनगर का उजाड़ मैदान था। तब कहीं कोशी नदी थी, जिसमें बरसात के बाद एक बूँद जल का दर्शन भी आठवाँ आश्चर्य माना जा सकता है। कोशी नदी के बाद ? उफ़ ! अभी तो हरिहरपुर की कल्पना भी असंभव है। दोनों बच्चे अपनी पूरी ताकत से जल्दी जल्दी पैर बढ़ाये जा रहे थे। अपने नन्हे नन्हे कदमों से इन्हे जीवन का दिगंतव्यापी रेगिस्तान नापना था !

३

‘भैया, प्यास लगी है।’

सुकन ने अपने हाथ की कचौरी समाप्त करके होठों को बड़ी बेकली के साथ चाटते हुए कहा—‘भैया, प्यास लगी है।’ जगन ने इधर उधर नज़र दौड़ाकर देखा। बहुत दूर पर चित्तिज की धुंधली रेखा से सटी हुई कुछ हरियाली सी नजर आई। अपने बड़े भाई को चुप देखकर फिर सुकन ने रुँधे स्वर में कहा—‘भैया, पानी पीऊँगा।’ जगन ने ऊपरी मन से घुड़क कर कहा—‘जल्दी जल्दी चल। पाजी कहीं का। मारूँगा एक तमाचा, जो बदमाशी की। देख सामने बाग है। वही पानी मिलेगा। जल्दी

चल !'। भडकती हुई प्यास को सूखे कलेजे में दबाकर मुक़न अपने भाई के पीछे पीछे दौड़ा। उसके नन्हे नन्हे पैर पक गये। गर्मी और प्यास के मारे चलने की ताब अब उसमें न रह गई। मुँह में थूक का नामोनिशान न था, जिससे कुछ शांति मिलती, कंठ को कुछ तरावट मिलती, हृदय को कुछ जीवन मिलता, फेफड़ों को कुछ आराम मिलता। जगन अपने छोटे भाई को धमकाकर पूरी तेजी से बढ़ चला। वह चाहता था कि किसी तरह इस मैदान को पार कर जाय। पर ऐसा जान पड़ता था कि जैसे जैसे ये दोनों बच्चे आगे बढ़ते थे, वैसे ही वैसे सामने—दूर पर—नज़र आने वाली बारी पीछे की ओर खिसकती जाती हो। दुर्भाग्य का मैदान बड़ा लम्बा होता है। बड़े साहसी का काम है, जो इस अतंत मैदान को अपने कदमों से नाप डाले। इतना साहस उन दोनों अभागे गरीब बच्चों में न था। विधाता का विधान किसी का मुँह नहीं जोहता, न वह पक्षपात ही करता है।

धूलि का एक बवंडर उठा। दोनों बच्चे मानो धूलि की आँधी में घिर गये। क्षण भर के लिए दोनों अकचका कर खड़े हो गये। जगन ने अपने पीछे से एक पतली सी कराहती हुई आवाज़ सुनी—'भैया, पानी.. बड़ी प्यास !'

जगन का साहस छूट गया। उसने अपने थके हुए कातर भाई को आगे कर लिया। पुचकार कर जगन ने कहा—'चल, चल, सामने बगीचा है। हम वही रुक जायेंगे, पानी भी मिलेगा और एक कचौरी भी। वह देख सामने। अब तो हम पहुँच

ही गये । आध कोस और है—आध घंटे का गमना । जल्दी चल, नहीं तो कचौरी न मिलेगी ।’

सुकन का चेहरा पीला पड़ गया था । वह थरथरा और हॉफ रहा था । खोन्चे को सिर पर गवने के कागगा जगगन का सिर और आधा शरीर एक प्रकार से छाया में था । इन्हे पच्छिम की ओर जाना था । जगगन ने अपने छोटे भाई को इस वार आगे कर लिया । अपनी छाया में वह उसे ले चला, पर प्यास की ज्वाला संतोष के जल से शांत हो जाय, यह बात असंभव थी । जगगन चाहता था कि खोन्चा रखकर वह अपने भाई को गोद में उठा ले और दौड़ता हुआ बगीचे की शीतल छाया में पहुँच जाय । एक मील क्या, अभी उन्हें एक कोस और चलना था । माँ का भय खोन्चा रखने की अनुमति नहीं देता था । वह यह नहीं तय कर सका कि खोन्चा और अनुज—इन दोनों में कौन ग्राह्य और कौन त्याज्य है । वह दोनों ही की रक्षा करना चाहता था । कुछ दूर चलने के बाद सुकन ठोकर खाकर औंधे मुँह गिरा । जगगन खोन्चा रख कर भाई को उठाने चला । वह अर्ध-मूर्च्छित-सा पानी.. पानी करने लगा । इधर जगगन का तालू भी सूख रहा था । तपे हुए तवे की तरह धूप चमक रही थी और चकाचौंध के मारे इधर उधर देखना असंभव था । सुकन जिस स्थान पर गिरा, वहाँ धुनी हुई हुई की तरह धूलि का ढेर था जिस पर हवा के झकोरे नाच रहे थे !

बड़ी कठिनाई से अपने छोटे भाई को उठाकर जगगन ने

खोन्चा उठाने का प्रयत्न किया । धूप की कड़ी गरमी लगने से पिघल कर खोन्चे मे से तेल रिसना आरंभ हो गया था । तेल से भीगा हुआ लकड़ी का भारी खोन्चा, जिसका रंग काला पड़ गया था, चिकना हो गया था । इधर जग्गन प्यास से और अपने छोटे से गरीब अनुज की व्याकुलता से घबरा उठा । हाथ से खोन्चा छूटकर गिर पड़ा और बची-बचाई कचौरियाँ और जलेबियाँ धूलि मे बिखर गईं । जग्गन चाहता था कि वह जल्दी जल्दी अपने इस कालपथ्र को पार कर जाय, पर अब उसे रुकना पड़ा । इधर सुक्कन खडा खडा काँप रहा था और मुँह खोलकर हाँफ रहा था । जग्गन जल्दी जल्दी कचौरियाँ चुनने लगा । कचौरियाँ गिनी हुई थी । माँ से पिटने का भय था । दूर दूर छिटक कर चली जानेवाली कचौरियों को संभाल कर एकत्र करना, साथ ही कपड़े से उन्हें पोंछते भी जाना एक कठिन काम था । सुक्कन ने बेकली से गिरते हुए कहा—‘भैया पानी. पानी.. पानी ला दो. भैया . ।’

इस बार सुक्कन अचेत सा हो गया । जग्गन ने अपने भाई के सूखे हुए मुँह को अपनी मैली धोती से पोंछकर पुचकारते हुए कहा—‘चलो । बस, सामने तो बगीचा है । लो, एक कचौरी खाते चलो ।’

जग्गन ने हाथ पकड कर सुक्कन को उठाना चाहा; पर वह न उठ सका, बल्कि हाथ छोड़ते ही, वही पर—तपी जमीन और धूलि पर ही, औंधे मुँह लेट गया । अत्यंत क्षीण स्वर मे सुक्कन बोला—‘पा.. नी पा...नी...’ ।

जेठ का दोपहर खेतों में दहाड़ रहा था, धूलि उड़ा रहा था, आग बरसा रहा था। सुकन खोन्चा रखकर हाग-सा बैठ गया। अपने नन्हे से साथी को खींच कर उसने बैठाया, पर वह फिर लुढ़क कर गिर पड़ा। जगन ने देखा कि सुकन के होठ काले पड़ गये हैं, हाथ-पैर ऐंठ गये हैं। सुकन की ठुड़ी पकड़कर उसने उसके पसीने भरे मुँह को ऊपर उठाया, पर उसका सिर एक ओर लुढ़क गया। जगन रो उठा। उसने बड़े प्यार से पुकारा—‘सुकन, अरे सुकन।’ एक अत्यंत क्षीण स्वर सुकन के सूखे हुए होठों के भीतर से निकला—‘पा .नी’। बस।

जेठ ने धूलि की चादर से दोनों अभागे बच्चों को छिपा लिया।

× × × ×

संध्या।

जेठ की संध्या, तपस्विनी की तरह, अपनी सजावटहीन शोभा के साथ हरिपुर के खेतों के उस पार धीरे धीरे थकी हुई सी उतरी। शेषनाग के फूत्कार की तरह रह रह कर गरम हवा के हलके हलके झोंके आते जाते थे। चोंच खोले हुए पक्षी वृक्षों पर हक्के-बक्के दिखलाई पड़ने लगे। आँखें मलते हुए ग्रामवासी अपनी अपनी राममडैया के दरवाजे से झाँकते हुए नज़र आये। मटमैली धूप ऊँचे ऊँचे वृक्षों की चोटियों पर, शव के चेहरे पर पड़ने वाले हलके प्रकाश की तरह चमकने लगी। गाँव की गलियों में दो चार कुत्ते जीभ निकाल कर हाँफते हुए भी दिखलाई पड़े।

गाँव के एक छोर पर छोटे से कच्चे घर में एक दुर्बल रोगिणी स्त्री कराहती हुई अपनी टूटी सी खाट से उतरी। इधर उधर देखकर उसने धीरे धीरे बड़बड़ाना आरंभ किया—‘अब तक नहीं ..आये। कहाँ रह गये दोनों! उफ़ कितनी पीडा है . शरीर टूट रहा है ..मौत दे दो भगवान्। खूब...पीटूँगी. सुकना...बड़ा बदमाश .है पूरा खेलाडी . हाँ, कही खेल ..रहा.. होगा। जगना भी. .। मर जायँ ऐसे कपूत मैं मर रही हूँ वे ..खेल . रहे होंगे, क्या परवा है।’

कराहती हुई उस रोगिणी ने चूल्हे में आग डालकर हॉडी चढ़ाई और भात बनाकर खुद दरवाजे के पास आकर बैठ गई। कुछ देर बैठकर उसने फिर बोलना शुरू किया—‘दोनों .भूखे ..आवेगे। जगना . तो बड़ा . हो गया है . पर सुकना उफ़ हरे हरे, कितना दर्द ..है शरीर में .हाँ, सुकना . आते ही भात खोजेगा बना...कर.. रख दिया है पर अभी.. आये नहीं.. कहाँ गये। हे भगवान्. उठा लो . इस संसार से, नारायण !. अब सहा नहीं. जाता।’

संध्या ने रात का रूप धारण कर लिया। गाँव के छप्परों में से धूँआ निकलने लगा। शिवराम पाडेय की चौपाल पर भौंक ढोलक के साथ रामायण की कथा शुरू हो गई। पेड़ों के इधर उधर चिमगादड़ उड़ने लगे। धूलि से भरे हुए आकाश में कुछ इनेगिने तारे टिमटिमाने लगे।

रोगिणी स्त्री व्याकुल होकर किसी के भी पैरों की आहत

पाती तो भट दरवाजे पर आती । उसके बच्चे आज अभी तक लौट कर नहीं आये । ऐसा तो कभी न हुआ था । पर इसका जवाब कौन दे ? क्या ही अच्छा होता यदि हवा बोल सकती, ये तारे बोल सकते, यह पृथिवी बोल सकती और यदि यह आकाश ही बोल सकता । यदि विधाता ने इन्हे गूँगा बनाया था तो दुर्भाग्य के कंठ में तो बागी दे देते । यदि ऐसा होता तो लाचार मानवजाति का कितना हित होता, कितना उपकार होता, कितनी भलाई होनी ? जो हो, पर विधाता से बहस नहीं की जा सकती—लाचारी है ।

श्री ऋषभचरण जैन

जीवन-परिचय

आप जाति के दिगम्बर जैन हैं। भारत की राजधानी देहली में रहते हैं। बड़े प्रतिष्ठित संपन्न घराने से सम्बन्ध रखते हैं। अभी नवयुवक ही हैं। बड़े उत्साही, हँसमुख और व्यापार-कुशल हैं। साहित्य-मंडल, जिसमें बड़ा उच्चकोटि का हिन्दी साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसके संस्थापक आप ही हैं। आजकल आप देहली से ही 'सचित्र दरबार' नामक एक देशी राज्य सम्बन्धी स्वतन्त्र साप्ताहिक भी प्रकाशित कर रहे हैं। आप केवल प्रकाशक ही नहीं, हिन्दी के अच्छे लेखक भी हैं।

'परख' आपकी उत्कृष्ट रचना है।

परख

हम अपनी कहानी भारतीय इतिहास के मुगलपृष्ठ की उस पंक्ति से आरंभ करेंगे, जब सम्राट् अकबर के विरुद्ध उसके बेटे सलीम ने विद्रोह का झंडा उठाया था। इस विद्रोह में सहयोग देने-वाले अधिकतर हिंदू-राजपूत थे, जो बाप की अपेक्षा बेटे में हिंदू-रक्त का आधिक्य देखते थे।

रतनसिंह नाम का एक नौजवान राजपूत सलीम की सेना में बड़ा अफसर था। वह ऐसी वीरता से लड़ता था, और ऐसी लापरवाही से शत्रु-सेना के परे-के-परे साफ़ करता था कि उभय पक्ष के आदमियों के स्वर में—उसका नाम लेते हुए—एक विशेषता पैदा हो जाती थी।

इसी पृष्ठ की दूसरी पंक्ति में सलीम आत्मसमर्पण कर देता है, और उसके पक्षपाती विद्रोहियों को प्राणदंड दिया जाता है।

केवल रतनमिह का पता नहीं मिलना, जाने उसे आकाश खा गया, या जमीन हडप गई। अकबरी दम्नग्वतों से एक हजार अशार्फियों का इनाम उसके या उसके सिर के लिये निकला।

२

दिल्ली से एक कोस दूर एक भिग्वागियों का गाँव है—गाँव न कहकर उसे बीसेक भोपडियों का जमघटा कहना ज्यादा ज़ेचंगा। वही एक भोपडी मे

एक जवान था—फटे-हाल, गंदे, फटे-पुराने चिथड़े पहने, सिर के बाल अस्त-व्यस्त, रूखे और डरावने, हाथ-पैर आधे नंगे और शरीर के अन्य अवयव मैले, कठोर और रूखे, शरीर और चेहरा भरा हुआ, परंतु परेशान। उसके नंगे घुटने पर एक बूढ़े का सिर था, जिसके सिर के बाल आधे काले, आधे सफेद, दाढ़ी बंदब बड़ी हुई, चेहरा उदास, गालों पर झुर्रियाँ और आँखे बंद होने के कारण कोयों पर स्याही फैली हुई। कपड़े बहुत से—परंतु सब बे-तरह गंदे, बदबूदार चिथड़े-चिथड़े और मटमैले। कमज़ोरी और बीमारी के कारण बूढ़ा काँप रहा था और रह-रहकर उसके मुँह से करुणा-जनक चीख निकल जाती थी। जवान बड़ा परेशान और घबराया हुआ था और मन में उस स्थिति का अनुभव कर रहा था, जिसमें मनुष्य की—क्या करूँ ? बुद्धि का नाश हो जाता है।

अचानक बूढ़े के मुँह से निकला—‘प्यास.. . पानी...!’

युवक ने सावधानी से घुटना निकाला और मिट्टी का बर्तन उठाया। परंतु बर्तन खाली था !

बर्तन उठा वह घर से बाहर निकला। सामने ही कुआँ था। भूख के मारे उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, पर हिम्मत ने अभी जवाब नहीं दिया था।

असल में यही रतनसिंह है। विद्रोहियों की धर-पकड़ में यह मौका पाकर भाग निकला था और बाप के साथ किसी अज्ञात स्थान में रहने पर बाध्य हुआ था।

जो कुछ नकदी पास थी वह खत्म हो गई, और अब भीख माँगने की नौबत आ गई। बेटे ने बाप से कहा—‘तुम्हें कष्ट न होने दूँगा, मैं स्वयं भीख माँगकर लाऊँगा।’

बाप ने सुझाया—‘तुम पहचाने गए, तो पकड़े जाओगे।’

बेटा मजबूर हो गया। बाप भीख माँगकर लाता और दोनों खाते। कई दिन से बाप बीमार है। जो सूखे टुकड़े घर में थे, बंटे ने उनसे बाप को पोसा, पर जब वे भी खत्म हो गए तब... ..

हाँ, अब उसने बाप को पानी पिला कर खुद भीख माँगने जाना स्थिर किया। तैयार हो गया। तैयारी में हाथी-घोड़े थोड़े ही जुटाने थे। एक फटा कोट पहना, एक सड़ा कपड़ा सिर पर लपेटा, बाप के शरीर को अच्छी तरह ढका और बोला—‘दादा, मैं अभी आया।’ कहकर चला गया।

बाप ने सुना, टिमटिमाती हुई आँखें खोलकर बेटे की तैयारी देखी, उसके मन में क्या तूफ़ान उठा, वही जाने—पर जब बेटा भोपड़ी का जीर्ण द्वार ढलका रहा था, तब बूढ़े के होठ हिल रहे थे और वह कुछ बोलने की भयंकर कोशिश कर रहा था।

पर बोला नहीं गया।

३

रतनसिंह छिपता-छिपाता दिल्ली में घुसा। किसी प्रकार दादा को बचाना होगा—यही उसका इरादा था। वह जो छिपने की कोशिश कर रहा था—वह अपने लिये नहीं—बाप के लिये। बाप के लिये ही वह तलवार छोड़कर जूठन खाने को तैयार हुआ था, और बाप के लिये ही वह अपनी जान का बहुत बड़ा मूल्य आँकने पर विवश हुआ था। बाप के लिये ही वह कायर बनकर भागा था, और बाप के लिये ही—जब तक बाप जीता रहे—उसे किसी प्रकार भी मरना स्वीकार न था। कारण—उसका बाप अंधा था।

पर प्रसंग दिल्ली का है।

हाँ, तो वह दिल्ली के बाजारों में फिरने लगा। लंबे लंबे चोगे शरीर में, लंबी-लंबी तलवारे बगल में लटकाए, घोड़ों पर चढ़े राजपूत और मुगल सदाँर मस्ती में इधर-उधर घूम रहे थे। ढाके की मलमल का पतला लिबास, और पतले रंगीन कपड़े की खुश-नुमा पगड़ियों पहने मुसलमान-हिंदू गृहस्थ अपनी-अपनी राह जा

रहे थे । द्वारों पर शहनाई बज रही थी, तारो पिट रहे थे, पेड़ों के नीचे हाथी खड़े बच्चों की भीड़ के कौतूहल का विषय बन रहे थे । साराश—

दिल्ली के शाही बाज़ारों की चेचें-मेमे ने और महलों और कोठों की बे-तरतीब कतारों ने एक विचित्र नेत्ररंजक दृश्य उपस्थित कर रक्खा था । रतनसिंह घंटों घूमता रहा और दिल्ली के दृश्य देखता रहा ।

अचानक एक अंधे-भिखारी को देखकर उसे बाप की याद आ गई—और भीख देने योग्य आदमियों को उसने टटोलना शुरू किया ।

पर आज उसे मालूम हुआ—भीख माँगना कितना मुश्किल है । क्या कहकर माँगे ? क्या कहे ? कैसे कहे ?

एक राह चलते अमीर की तरफ़ बढ़ा—नेत्रों में आशा की जगह भय लिये हुए—पास भी पहुँच गया, पर बाणी बंद । क्या कहे ? कैसे कहे ? अमीर आगे निकल गया ।

कई ऐसे अवसर निकल गए, और तलवरिया रतनसिंह भिन्ना के इस नए 'आर्ट' में फ़ैल हो गया । अचानक वह चौंका ।

४

एक चौराहा—और उसके बीच में एक ऊँचा चबूतरा और इस चबूतरे के सामने दर्जनों आदमियों की खमखम भीड़ । रतनसिंह ने भीड़ को देखा और मुँह उठाए उधर ही चल पड़ा ।

भीड़ का कारण जानने के लिये उसे भीतर घुसना पडा और भीतर घुसने के लिये उसे काफ़ी परिश्रम करना पडा। तब जाकर उसे कारण मालूम हुआ—और कारण मालूम होने पर क्या हुआ—उसे ठीक ऐसा अनुभव हुआ जैसे चिलचिलाती धूप में किसी की आँखों पर पट्टी बाँध देने के बाद घोर अंधकार में खोल देने पर उसे होता है। लमहे-भर वह कीला हुआ-सा खड़ा रहा, फिर सँभलकर पीछे हट गया।

यह उसकी गिरफ्तारी का विज्ञापन था !

बाहर आया। यह क्या ?—अकबर अभी उसे नहीं भूला है ? अभी उसकी कौन-सी दुर्दशा होनी शेष है—कारागार—मृत्युदंड !

और उसका बाप ?

रतनसिंह का शरीर सिर से पैर तक काँप उठा। और दादा ? उनका क्या होगा ? भूख—प्यास—कष्ट—तड़प-तड़पकर मृत्यु !

रतनसिंह के सामने वह भयंकर दृश्य बंदूक की गोली की तरह गुज़र गया।

उसने भाग जाने का इरादा किया।.....पर खाली हाथ ? बिना थोड़ी भीख लिए ? दादा तो फिर नहीं बच सकेंगे !

उपाय ?

वह एक दीवार के सहारे खड़ा हो गया, मस्तिष्क को संयत किया—और तब ? बिजली की तरह एक विचार उसके दिमाग में दौड़ गया ।

अधिक न सोचा । बस—एक बार भीड़ में घुसकर विज्ञापन पढ़ा ।—कोई संदेह नहीं—अकबरी मोहर, रतनसिंह के लिये, उसी का हुलिया !

बस, किसी से पूछकर वह सीधा शाही दरबार की तरफ दौड़ा ।

५

दरबार—आम था । अमीर उमरा, प्यादे और पुलीस, फ़ौज़ और फ़रियादी—सभी उपस्थित थे । बादशाह अकबर अपने आसन पर थे और दरबार की कार्यवाई जारी थी ।

अचानक एक द्वारपाल उपस्थित हुआ । दंडवत के बाद उसने निवेदन किया—‘जहाँपनाह ! एक नौजवान ख़राब-ख़स्ता परेशान भिखारी श्रीमान् की चरण-वंदना का प्रार्थी है ।’

आज्ञा मिली । भिखारी उपस्थित किया गया, बिना सलाम किए ही वह उहड़ भाव से खड़ा हो गया । बोला—‘ओ बादशाह, तुमने रतनसिंह को पकड़नेवाले व्यक्ति के लिये एक हज़ार अशर्कियों का पुरस्कार घोषित किया है ?’

अकबर भिखारी के इस अनोखे और अनपेक्षित प्रश्न को

सुनकर कुछ ऐसे विस्मित हुए कि भिखारी की बदजबानी को नजर-अंदाज़ करके आप-ही-आप उनका सिर हिल गया, और मुँह से हुँकार की हलकी आवाज निकल पड़ी।

भिखारी ने कहा—‘अगर मैं उसे यहाँ ले आऊँ, तो पुरस्कार मुझे मिलेगा ?’

फिर वैसा ही हुआ—सिर हिलना और हुँकार !

‘तो ला, मैं रतनसिंह हूँ, मुझे इनाम दे।’ उसने बड़े गँवार-पन से हाथ फैलाया। ‘पर देख,’ उसने आधे पल के लिये सिल-सिला तोड़कर कहा—‘इनाम लेने के बाद मैं कुछ घंटों की छुट्टी चाहूँगा। मेरा अंधा बाप भिखारीपुरे में भूखा और बीमार पड़ा है। उसका उचित प्रबंध करके मैं स्वयं हिरासत में आ जाऊँगा; अपनी बहादुरी की शपथ खाता हूँ, नहीं तो, मेरे साथ सिपाही—’

अकबर सम्हल चुके थे। परिस्थिति और अपनी मर्यादा उनके सामने थी। दरबारी पहले चुप, फिर विस्मित—और तब कानाफूसी।

अकबर ने रतनसिंह की बात पूरी न होने दी और गरजकर कहा—‘इस बदलगाम बागी भिखारी को ज़ेर-हिरासत.....’

वाक्य पूरा न हुआ, और रतनसिंह पकड़ा गया।

अकबर का दूसरा हुक्म हुआ—‘.. क़ैदखाने में...’

रतनसिंह ने क्रोध, रोष, दया मिली नजर बादशाह पर फेकी और भेड़ की तरह घिघियाकर कहा—‘ओ अन्यायी बादशाह !... भिखारीपुरे मे मेरा बाप. ’

एक सिपाही ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया ।

६

काली रात थी ।

जंगले के छड़ क़ैदी के हाथ मे थे, और मन उसका भिखारी-पुरे की भोपड़ी मे अपने बाप की मृत्यु देख रहा था । पहरेदार संगीन खीचे द्वार पर घूम रहा था और सन्नाटे से भरी रात ‘जन-जन्’ बोल रही थी ।

अचानक क़ैदी ने देखा—अंधकार मे से कोई मनुष्यमूर्ति निकलकर पहरेदार की तरफ़ बढी । पहरेदार ने आगंतुक को रोका और आगे बढकर उसके पास गया ।

क़ैदी ने चौंककर देखा—पहरेदार ने अचानक जमीन तक झुककर आगंतुक को मार्ग दे दिया, और फिर आगे आकर कोठरी का द्वार खोल दिया ।

क़ैदी ने छड़ छोड़ दिए और दीवार के साथ लगकर दर्वाज़ा खुलने की बाट देखने लगा ।

दर्वाज़ा खुला और सादे कपड़े पहने एक आदमी ने प्रवेश किया । पहरेदार ने मसाल जलाई । क़ैदी ने पहचाना—आगंतुक खुद अकबर था । आश्चर्य !

पहरेदार के हाथ से मसाल लेकर बादशाह ने दीवार में एक जगह खोंस दी और पहरेदार को बाहर जाने का संकेत किया। वह झुकता हुआ चला गया।

बादशाह ने हँसकर कहा—‘बहादुर, पहचाना ?’

उसने सिर हिलाया—‘हाँ।’

‘तुम जानते हो, मैं क्यों आया हूँ ?’

‘नहीं।’—सिर हिला।

‘तुम्हें आज्ञाद करने।’

उसकी आँखें चमकीं।

‘और इनाम देने।’

कैदी का आश्चर्य बढ़ा।

‘यह पत्नी; खज़ाने में पेश करते ही एक हजार अशर्कियाँ पाओगे,’ अकबर ने एक काराज क़ैदी के आगे फेककर कहा—‘और यह आज्ञादी, दर्वाजे की तरफ़ इशारा किया—‘जाओ।’

रतनसिंह चुप। फिर बोला—‘ओ बादशाह, अब मेरा बाप मर चुका होगा। अब मुझे कोई इच्छा नहीं है।’

‘तेरा बाप ज़िन्दा है।’

‘सच ?’—उसने चमककर पूछा।

सचमुच ! तेरा बाप ज़िन्दा और खुशहाल है। जा, आज्ञादी और इनाम दोनों बरसता हूँ।’

एक दीर्घ निस्तब्धता । और फिर—‘बादशाह, अशर्फियाँ और आजादी खैरात हैं । मैं दुश्मन की खैरात न लूँगा ।’

बादशाह निरुत्तर ।

ठहरकर कहा—‘रतनसिंह, अशर्फियाँ तेरी बहादुरी के लिये, और आजादी तेरे अंधे बाप के लिये ।’

अंधा बाप । रतनसिंह का मस्तिष्क बौखला उठा । अंधा बाप । तड़प-तड़पकर मृत्यु ।

पर, दुश्मन की खैरात ! दुश्मन की भीख ! दुश्मन का नमक !

भिखारी का बेटा होकर भी वह बहादुर था ।

उसके मुँह से निकला—‘बादशाह !तू ..दुश्मन... तेरा नमक.....

अकबर का उदार हृदय नाच उठा । ऐसा वीर ! ऐसा दृढ़ ! बोला—‘तेरे-जैसा दुश्मन तो अभिमानयोग्य है । क्यों न तुझे मित्र बनाकर अपना गर्व द्विशुणित करूँ ? तेरे जैसा जाँ-निसार बेटा जरूर जाँ-निसार सिपाही होगा ।’

हाथ फैलाकर अकबर ने रतनसिंह को छाती से लगा लिया ।

* * *

कहते हैं, रतनसिंह बढ़ते-बढ़ते अकबर का सिपहसालार बन गया था ।

श्री सुदर्शन

जीवन-परिचय

ये पंजाबी है। इनका जन्म सन् १८८६ में सियालकोट में हुआ था। बचपन ही से आपकी प्रवृत्ति लिखने की ओर थी। सन् १९१३ में इन्होंने कालेज छोड़ लाहौर के हिंदुस्तान नामक साप्ताहिक पत्र में नौकरी कर ली। इसके बाद इन्होंने कई और पत्रों में काम किया। सन् १९२० से इनकी रुचि हिंदी की ओर हुई।

आपकी कहानियों के संग्रह 'सुदर्शन सुधा', 'तीर्थ यात्रा' आदि के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी कहानियों के पात्र साधारण श्रेणी के व्यक्ति होते हैं। इनकी कुछ कहानियों के कथानक राजनीतिक आंदोलन से भी लिए गए हैं। आपने नागरिक जीवन के चित्रण में सफलता प्राप्त की है। आपकी लेखनी के स्पर्श से नगरों की मध्यम श्रेणी के लोग भी किसान और श्रमियों की सौम्यता प्राप्त कर लेते हैं।

भाषा आपकी सरल और चलती हुई है। हाँ, प्रांतीयता की छाप उस पर अवश्य है। प्रारंभिक रचनाओं में संस्कृत का जहाँ तहाँ भद्दा प्रयोग हुआ है।

सुदर्शन जी अथक परिश्रमी तथा प्रतिभाशाली लेखक हैं। आज कल आप कलकत्ते की न्यूथियेटर्स कंपनी के लिये कथानक तैयार करते हैं।

सच का सौदा

विद्यार्थी परीक्षा में फ़ेल होकर रोते हैं, पंडित सर्वदयाल पास होकर रोये। जब तक पढ़ते थे, तब तक कोई चिंता न थी, घी खाते थे, दूध पीते थे, अच्छे अच्छे कपडे पहनते थे, तडक भड़क से रहते थे। उनके माता-पिता इस योग्य न थे कि कालेज का खर्च सह सके, परंतु उनके मामा एक ऊँचे पद पर नियुक्त थे। उन्होंने चार वर्ष का खर्च देना स्वीकार किया, परंतु यह भी साथ ही कह दिया कि 'देखो, रुपया लहू बहा कर मिलता है। मैं वृद्ध हूँ, जान मार कर चार पैसे कमाता हूँ। लाहौर जा रहे हो, वहाँ पग पग पर उपाधियों हैं, कोई चिमट न जाय। व्यसनों से बचकर डिग्री लेने का यत्न करो। यदि मुझे कोई ऐसा-वैसा समाचार मिला, तो खर्च भेजना बंद कर दूँगा।' सर्वदयाल ने वृद्ध मामा की बात का पूरा पूरा ध्यान रक्खा, और अपने आचार-विचार से न केवल उनको शिकायत का ही अवसर न दिया बल्कि वे उनकी

आँख की पुतली बन गये। परिणाम यह हुआ कि मामा ने सुशील भतीजे को आवश्यकता से अधिक रुपये भंजने शुरू कर दिये, और लिख दिया कि 'तुम्हारे खान-पान में मुझे कोई आपत्ति नहीं, हाँ, इतना ध्यान रखना कि कोई बात मर्यादा के विरुद्ध न होने पाये। मैं अकेला आदमी, क्या रुपया साथ ले जाऊँगा। तुम मेरे सम्बन्धी हो, यदि किसी योग्य बन जाओ तो इससे अधिक प्रसन्नता की बात क्या होगी?'। इससे सर्वदयाल का उत्साह बढ़ा। पहले सात पैसे की जुराबें पहनते थे, अब पाँच आने की लेने लगे। पहले मलमल के रुमाल रखते थे, अब एटोनिया के रखने लगे। दिन को पढ़ने और रात को जागने से सिर में कभी कभी पीडा होने लगती थी, कारण यह कि दूध के लिए पैसे न थे। परंतु अब, जब मामा ने खर्च की डोरी ढीली छोड़ दी, तब धी-दूध दोनों की मात्रा बढ़ गई। इतना होते हुए भी सर्वदयाल उन व्यसनों से बचे रहे, जो शहर के विद्यार्थियों में प्रायः पाये जाते हैं।

इसी प्रकार चार वर्ष बीत गये, और इस बीच में उनके मामा की मृत्यु हो गई। इधर सर्वदयाल बी० ए० की डिग्री लेकर घर को चले। जब तक पढ़ते थे सैकड़ों नौकरियों दीखती थीं, परंतु पास हुए तो कोई ठिकाना न दीख पड़ा। पंडित जी घबरा गये। जिस प्रकार यात्री दिन-रात चलकर स्टेशन पर पहुँचे, किंतु उसे गाड़ी में स्थान न मिले, उस समय उसकी जो अवस्था होती है ठीक वही दशा पंडित जी की हुई। उनके पिता पंडित शंकरदत्त पुराने जमाने के आदमी थे। उनका विचार था कि बेटा अँगरेजी

बोलता है, पतलून पहनता है, नेकटाई लगाता है, तार तक पढ़ लेता है, इसे नौकरी न मिलेगी तो और किसे मिलेगी । परंतु जब बहुत दिन गुजर गये और सर्वदयाल के लिए कोई आजीविका न बनी, तब उनका धीरज छूट गया, जैसे जल का वेग बाँध को तोड़ देता है । पुत्र से बोले—‘अब तू कोई नौकरी भी करेगा या नहीं ? मिडिल पास लौंडे रूप्यों से घर भर देते हैं । एक तू है कि पढ़ते पढ़ते बाल पक गये, परंतु नौकरी का नाम नहीं ।’

सर्वदयाल के कलेजे मे मानों किसी ने तीर मार दिया । सिर झुका कर बोले—‘नौकरियाँ तो बहुत मिलती हैं, परंतु वेतन थोड़ा देते हैं, इसलिए देख रहा हूँ कि कोई अच्छा अवसर हाथ आ जाय तो करूँ ।’

शंकरदत्त ने उत्तर दिया—‘यह तो ठीक है, परंतु जब तक अच्छी न मिले, मामूली ही कर लो । फिर जब अच्छी मिले, इसे छोड़ देना । तुम आप पढ़े लिखे हो, सोचो, निकम्मा बैठे रहने से कोई कुछ दे थोड़े ही जाता है ।’

सर्वदयाल चुप हो गये, उत्तर न दे सके । शंकरदत्त पूजा-पाठ करने वाले आदमी इस बात को क्या समझे, कि त्रैजुपट साधारण नौकरी नहीं कर सकता ।

दोपहर का समय था । सर्वदयाल टिब्ब्यून का ‘वाटेड’ कालम देख रहे थे । एकाएक एक विज्ञापन देखकर उनका हृदय धड़कने लगा ।

अम्बाले के प्रसिद्ध रईस रायबहादुर हनुमन्तरायभिह एक मासिक पत्र 'रफ़ीकहिन्द' के नाम से निकालने वाले थे। उमके लिए उन्हे एक सम्पादक की आवश्यकता थी, जो उच्च श्रेणी का शिक्षित और नवयुवक हो, लिखने में अच्छा अभ्यास रखता हो, और जातीय-सेवा का प्रेमी हो। वेतन पाँच सौ रुपया मासिक। पंडित सर्वदयाल बैठे थे, खड़े हो गये और सोचने लगे—'यदि यह नौकरी मिल जाय तो दारिद्र्य कट जाय। मैं हर प्रकार से इसके योग्य हूँ।' जब पढ़ते थे, उन दिनों साहित्य-परिपद् में उनकी प्रभावशाली वक्तृताओं और लेखों की धूम थी। बोलते समय उनके मुख से फूल बिखरते थे और श्रोताओं के मस्तिष्क को अपनी सूक्तियों से सुवासित कर देते थे। उनके मित्र उनको गोद में उठा लेते और कहते—'तेरी वाणी में मोहिनी है।' इसके सिवाय उनके लेख बड़े बड़े प्रसिद्ध पत्रों में निकलते रहे। पंडित सर्वदयाल ने कई बार इस शौक को कोसा था, आज पता लगा कि संसार में इस दुर्लभ पदार्थ का भी कोई ग्राहक है। कम्पित कर से प्रार्थना-पत्र लिखा और रजिस्टरी करा दिया। परंतु पीछे सोचा, व्यर्थ खर्च किया। मैं साधारण ग्रैजुएट हूँ, मुझे कौन पूछेगा? पाँच सौ रुपया वेतन है, सैकड़ों प्रार्थी होंगे और एक से एक बढ़कर। कई वकील और बैरिस्टर जाने को तैयार होंगे। मैंने बड़ी मूर्खता की, जो पाँच सौ रुपया देखकर रीझ गया, जिस प्रकार अबोध बालक चन्द्रमा को देखकर हाथ पसार देता है।' परंतु फिर विचार आया—'जो इस नौकरी को पायेगा, वह भी तो मनुष्य ही होगा। योग्यता सब में प्रायः एक ही सी होती है। हाँ,

जब तक कार्य मे हाथ न डाला जाय, तब तक मनुष्य भिन्नकता है। परंतु काम का उत्तरदायित्व सब कुछ सिखा देता है।' इन्ही विचारों मे कुछ दिन बीत गये, कभी आशा-कल्पनाओं की झडी बँध जाती थी, कभी निराशा हृदय मे अंधकार भर देती थी। सर्वदयाल चाहते थे कि इस विचार को मस्तिष्क से बाहर निकाल दूँ और किसी दूसरी ओर ध्यान दूँ, किंतु वे ऐसा न कर सके। स्वप्न मे भी यही विचार सताने लगे। पंद्रह दिन बीत गये, परंतु कोई उत्तर न आया।

निराशा ने कहा—चैन से बैठो, अब कोई आशा नहीं। परंतु आशा बोली, अभी से निराशा का क्या कारण ? पाँच सौ रुपये की नौकरी है, सैकड़ों प्रार्थना-पत्र गये होंगे। उनको देखने के लिए भी कुछ समय चाहिए। सर्वदयाल ने निश्चय किया कि अभी एक अठवाड़ा और देखना चाहिए। उनको न खाने की चिन्ता थी न पीने की चाह। दरवाजे पर खड़े डाकिये की बाट देखा करते। उसे आने मे देर हो जाती तो टहलते टहलते बाजार तक चले जाते। परंतु अपनी इस अवस्था को डाकिये पर प्रकट न करते, और पास पहुँच कर देखते देखते गुजर जाते। फिर मुड़कर देखने लगते, कहीं डाकिया बुला तो नहीं रहा। फिर सोचते—कौन जाने, उसने देखा भी है या नहीं। इस विचार से ढाढ़स बँध जाता, तुरंत चक्कर काटकर डाकिये से पहले दरवाजे पर जा पहुँचते, और बे-परवाह से होकर पूछते—'कहो भाई, हमारा भी कोई पत्र है या नहीं ?' डाकिया सिर हिलाता और आगे चला जाना। सर्वदयाल हताश होकर बैठ जाते। यह उनका नित्य का नियम हो गया था।

जब तीसरा अठवाड़ा भी बीत गया, और कोई उत्तर न आया तब सर्वदयाल निराश हो गये, और समझ गये कि यह मेरी भूल थी। ऐसी जगह सिफारिश से मिलती है, खाली डिगरियों को कौन पूछता है ? इनने ही मे तार के चपरासी ने पुकारा। सर्वदयाल का दिल उछलने लगा। जीवन के भविष्य मे आशा की ललित लता लहलहाती दिखाई दी। लपके लपके दरवाजे पर गये, और तार देखकर उछल पड़े। लिखा था—‘स्वीकार है, आ जाओ।’

३

सायंकाल को गाड़ी मे बैठे तो हृदय आनंद से गद्गद हो रहा था और मन मे सैकड़ों विचार उठ रहे थे। संपादकत्व उनके लिए जातीय सेवा का उपयुक्त साधन था। सोचते थे—‘यह मेरा सौभाग्य है, जो ऐसा सुअवसर मिला। जो कहीं क्लर्क भर्ती हो जाता, तो जीवन काटना दूमर हो जाता।’ वेग से कागज़ और पेन्सिल निकाल कर पत्र की व्यवस्था ठीक करने लगे। पहले पृष्ठ पर क्या हो, दूसरे पर क्या हो, सम्पादकीय वक्तव्य कहाँ दिये जायँ, सार और सूचना के लिए कौन-सा स्थान उपयुक्त होगा, ‘टाईटल’ का स्वरूप कैसा हो, सम्पादक का नाम कहाँ रहे, इन सब बातों को सोच सोचकर लिखते गये। एकाएक विचार आया, —कविता के लिए कोई स्थान न रक्खा, और कविता ही एक ऐसी वस्तु है जिससे पत्र की शोभा बढ़ती है। जिस प्रकार भोजन के साथ चटनी एक विशेष स्वाद देती है, उसी प्रकार विद्वत्तापूर्ण लेख और गम्भीर विचारों के साथ कविता एक आवश्यक वस्तु है।

उसे लोग रुचि से पढ़ते हैं । उस समय उन्हें अपने कई सुहृद् मित्र याद आ गये जो उस पत्र को बिना पढ़े फेंक देते थे जिसमें कविता व पद्य न हो । सर्वदयाल को निश्चय हो गया कि इसके बिना पत्र को सफलता न होगी । सहसा एक मनोरञ्जक विचार से वे चिहुक उठे । रात्रि का समय था, गाड़ी पूरे वेग से चली जा रही थी । सर्वदयाल जिस कमरे में यात्रा कर रहे थे, उसमें उनके अतिरिक्त एक यात्री और था, जो अपनी जगह पड़ा सो रहा था । सर्वदयाल बैठे थे, खड़े हो गये और पत्र पर तैयार किये हुए नोट को गद्दे पर रखकर इधर-उधर टहलने लगे । फिर बैठकर कागज़ पर सुंदर अक्षरों में लिखा :—

पंडित सर्वदयाल बी० ए०, एडीटर रफ़ीक-हिन्द, अम्बाला ।

परंतु लिखते समय हाथ कॉप रहे थे, मानो कोई अपराध कर रहे हों । यद्यपि कोई देखने वाला पास न था, तथापि उस कागज़ के टुकड़े को, जिससे ओछापन और बालकपन भलकता था, बार बार छिपाने का यत्न करते थे, जिस प्रकार अनजान बालक अपनी छाया से डर जाता हो । परंतु धीरे धीरे भय का यह भाव दूर हो गया, और वे स्वाद ले लेकर उस पंक्ति को बारम्बार पढ़ने लगे ।

पंडित सर्वदयाल बी० ए०, एडीटर रफ़ीक-हिन्द, अम्बाला ।

वे सम्पादकत्व के स्वप्न देखा करते थे । अब राम राम करके आशा की हरी भरी भूमि सामने आई, तो उनके कर्ण-कुहर में

वही शब्द गूँजने लगे जो उस कागज के टुकड़े पर लिखे थे.—

पंडित सर्वदयाल बी० ए०, एडीटर रफ़ीक-हिन्द, अम्बाला ।

देर तक इसी धुन और आनन्द में मग्न रहने के पश्चात् पता नहीं कितने बजे उन्हें नींद आई, परंतु आँखें खुलीं तो दिन चढ़ चुका था, और गाड़ी अम्बाला स्टेशन पर पहुँच चुकी थी । जाग कर पहली वस्तु जिसका उन्हें ध्यान आया वही कागज का टुकड़ा था, पर अब उसका कहीं पता न था । सर्वदयाल का रंग उड़ गया, आँख उठाकर देखा तो सामने का यात्री जा चुका था । सर्वदयाल की छार्ती में किस्मी ने मुक्का मारा, मानो उनकी कोई आवश्यक वस्तु खो गई हो । खयाल आया 'यह यात्री कहीं ठाकुर हनुमंतरायसिंह न हो । यदि वही हुआ और उसने मेरा ओछापन देख लिया तो क्या कहेगा ?'

इतने में गाड़ी ठहर गई । सर्वदयाल बेग लिये नीचे उतरे और स्टेशन से बाहर निकले । इतने में एक नवयुवक ने पास आकर पूछा—'क्या आप रावलपिंडी से आ रहे हैं ?'

'हाँ, मैं वहीं से आ रहा हूँ । तुम किसे पूछते हो ?'

'ठाकुर साहब ने बगधी भेजी है ।' सर्वदयाल का हृदय कमल की नाईं खिल गया । आज तक कभी बगधी में न बैठे थे, उचक कर सवार हो गये और इधर उधर देखने लगे । बगधी चली और एक आलीशान कोठी के अहाते में जाकर रुक गई । सर्वदयाल का हृदय धड़कने लगा । कोचवान ने दरवाज़ा खोला और वह आदर

से एक तरफ़ खड़ा हो गया। सर्वदयाल रुमाल से मुँह पोंछते हुए नीचे उतरे और बोले—‘ठाकुर साहब किधर होंगे ?’

कोचवान ने उत्तर में एक मुंशी को बुलाया और कहा—
‘बाबू साहब रावलपिंडी से आते हैं। ठाकुर साहब के पास ले जाओ।’

रफ़ीक-हिन्द के खर्च का ब्योरा इसी मुंशी ने तैयार किया था, इसलिए वह तुरंत समझ गया कि यह पंडित सर्वदयाल है जो रफ़ीक-हिन्द की सम्पादकी के लिए चुने गये हैं। आदर से बोला—
‘आइए, पधारिए !’

पंडित सर्वदयाल मुंशी के पीछे पीछे हो लिये। मुंशी एक कमरे के आगे रुक गया और रेशमी पर्दा उठाकर बोला—‘चलिए, ठाकुर साहब बैठे हैं।’

४

सर्वदयाल का सिर घूमने लगा। जो अवस्था निर्बल विद्यार्थी की परीक्षा के अवसर पर होती है, वही अवस्था आज सर्वदयाल की थी। सोचा कि ठाकुर साहब मेरे विषय में जो सम्मति रखते हैं, वह मेरी बात-चीत से बदल न जाय। तथापि साहस करके अंदर चले गये। ठाकुर हनुमंतरायसिंह तीस बत्तीस वर्ष के सुंदर नवयुवक थे, मुस्कराते हुए आगे बढ़े और बड़े आदर से सर्वदयाल से हाथ मिलाकर बोले—‘आप आ गये। कहिए, राह में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?’

सर्वदयाल ने धडकते हृदय से उत्तर दिया—“जी नहीं ।”

‘मैं आपके लेख बहुत समय से देख रहा हूँ । ईश्वर का बड़ी कृपा है जो आज दर्शन हो गए । निस्सन्देह, आपकी लेखनी में आश्चर्यमयी शक्ति है ।’

सर्वदयाल पानी पानी हो गये । अपनी प्रशंसा सुनकर उनके हर्ष का पारावार न रहा । तो भी संभल कर बोले—‘यह आपकी गुणज्ञता है ।’

ठाकुर साहब ने गम्भीरता से कहा—‘यह नम्रता तो आपकी योग्यता के अनुकूल ही है । परंतु मेरी सम्मति में आप-सरीखा लेखक पंजाब भर में नहीं । आप मानो या न मानो, समाज को आप पर सच्चा गर्व है । ‘रफीक-हिन्द’ का सौभाग्य है, कि उसे आप-सा सम्पादक प्राप्त हुआ ।’

सर्वदयाल के हृदय में जो आशंका हो रही थी वह दूर हो गई; समझे कि मैदान मार लिया । बात का रख बदलने को बोले—‘पत्रिका कब से निकलेगी ?’

ठाकुर साहब ने हँसकर उत्तर दिया—‘यह प्रश्न तो मुझे आपसे करना चाहिए था ।’

उस दिन १५ फ़रवरी थी । सर्वदयाल कुछ देर सोचकर बोले—‘पहला अंक पहली एप्रिल को निकल जाय ?’

‘अच्छी बात है, परंतु इतने थोड़े समय में लेख मिल जायँगे या नहीं, इस बात का विचार कर लीजिएगा ।’

‘इसकी चिंता न कीजिए, मैं आज ही से काम आरम्भ किये देता हूँ। परमात्मा ने चाहा तो आप पहले ही अंक को देखकर प्रसन्न हो जायेंगे।’

एकाएक ठाकुर साहब चिहुक कर बोले—‘कदाचित् यह सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि इस विज्ञापन के उत्तर में लगभग दो हजार प्रार्थना-पत्र आए थे। उनमें से बहुत से ऐसे हैं, जो साहित्य और लालित्य के मोतियों से भरे हुए थे, परंतु आपका पत्र सचाई से भरपूर है। किसी ने लिखा था—मैं इस समय दुकान करता हूँ और चार पाँच सौ रुपये मासिक पैदा कर लेता हूँ। परंतु जातीय-सेवा के लिए यह सब छोड़ने को तैयार हूँ। किसी ने लिखा था—मेरे पास खाने-पीने की कमी नहीं, परंतु स्वदेश-प्रेम हृदय में उत्साह उत्पन्न कर रहा है। किसी ने लिखा था—मैं बैरिस्टरी के लिए विलायत जाने की तैयारियाँ कर रहा हूँ, परंतु यदि आप यह काम मुझे दे सकें, तो इस विचार को छोड़ा जा सकता है। अर्थात् प्रत्येक प्रार्थना-पत्र से यही प्रकट होता था, कि प्रार्थी को वेतन की तो आवश्यकता नहीं, और कदाचित् वह नौकरी करना अपमान भी समझता है परंतु यह सब कुछ देश-प्रेम के हेतु सहने को उद्यत है। मानो यह नौकरी करके मुझ पर कोई उपकार कर रहा है। केवल आपका पत्र है, जिसमें सत्य से काम लिया गया है, और यह वह गुण है, जिसके सामने मैं सब कुछ तुच्छ समझता हूँ।’

एप्रिल की पहली तारीख को रफीक-हिन्द का प्रथम अङ्क निकला तो पंजाब के पढ़े लिखे लोगों में धूम मच गई, और पंडित सर्वदयाल के नाम की जहाँ तहाँ चर्चा होने लगी। उनके लेख लोगों ने पहले भी पढ़े थे, परंतु रफीक-हिन्द के प्रथम अङ्क ने तो उनको देश के प्रथम श्रेणी के सम्पादकों की पंक्ति में ला बिठाया। पत्र क्या था, सुंदर और सुगंधित फूलों का गुच्छा था, जिसकी एक एक कुसुम-कलिका चटक-चटक कर अपनी मोहिनी वासना से पाठकों के मन को मुग्ध कर रही थी। एक समाचार-पत्र ने समालोचना करते हुए लिखा:—

‘रफीक-हिन्द का प्रथम अङ्क प्रकाशित हो गया है, और ऐसी शान से कि देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। पंडित सर्वदयाल को इस समय तक हम केवल एक लेखक ही जानते थे परंतु अब जान पड़ा कि पत्र-सम्पादन के काम में भी इनकी योग्यता पराकाष्ठा को पहुँची हुई है। अच्छे लेख लिख लेना और बात है और अच्छे लेख प्राप्त करके उन्हें ऐसे क्रम और ऐसी विधि से रखना कि वे किसी की दृष्टि में खटकने न पायें, और बात है। पंडित सर्वदयाल की प्रभावशाली लेखनी में किसी को सन्देह न था, परंतु रफीक-हिन्द ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि आप सम्पादक के काम में भी पूर्णतया योग्य हैं। हमारी सम्मति में रफीक-हिन्द से वंचित रहना जातीय भाव से अथवा साहित्य व सदाचार के भाव से दुर्भाग्य ही नहीं, किंतु महान् अपराध है।’

एक और पत्र की सम्मति थी—‘यदि उर्दू-भाषा में कोई ऐसी मासिक-पत्रिका है, जिसे यूरोप और अमेरिका के पत्रों के सामने रक्खा जा सकता है तो वह रफ़ीक-हिन्द है, जो सब प्रकार के गुणों से सुसज्जित है। उसके गुणों को परखने के लिए उसे एक बार देख लेना ही पर्याप्त है। निस्सन्देह, पंडित सर्वदयाल ने उर्दू-साहित्य का सिर ऊँचा कर दिया है।’

ठाकुर हनुमन्तराय ने यह समालोचनाएँ देखी तो आनन्द से उछल पड़े। वे मोटर में बैठकर रफ़ीक-हिन्द के कार्यालय में गये, और पंडित सर्वदयाल को बधाई देकर बोले—‘मुझे यह आशा न थी कि हमें इतनी सफलता हो सकेगी।’

पं० सर्वदयाल ने उत्तर दिया—‘मेरे विचार में यह कोई बड़ी सफलता नहीं।’

ठाकुर साहब ने कहा—‘आप कहते रहे, कि तु स्मरण रखिए वह दिन दूर नहीं जब अख़बारी दुनिया आपको पंजाब का शिरोमणि स्वीकार करेगी।’

६

इसी प्रकार एक वर्ष बीत गया; रफ़ीक-हिन्द की कीर्ति देश भर में फैल गई, और पंडित सर्वदयाल की गिनती बड़े आदमियों में होने लगी। कंगाली के दिन बीत चुके थे, अब ऐश्वर्य्य और ख्याति का युग था। उन्हें जीवन एक आनंदमय यात्रा प्रतीत होती थी, जो फूलों की छाया में तय हो रही हो, और जिसे आस-

पल्लवों में बैठकर गानेवाली श्यामा और कली कली का रस चूसनेवाला भौरा भी तृषित नेत्रों से देखता हो, कि इतने में भाग्य ने पाँसा पलट दिया ।

अम्बाला की म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बर चुनने का समय समीप आया । ठाकुर हनुमंतसिंह भी एक पक्ष की ओर से मेम्बरी के लिए प्रयत्न करने लगे । धनाढ्य पुरुष थे, रुपया-पैसा पानी की नाई बहाने को उद्यत हो गये । उनके मुक्काबले में लाला हशमताराय खड़े हुए, हाई स्कूल के हेडमास्टर, वेतन थोड़ा लेते थे, कपड़े साधारण पहनते थे, कोठी में नहीं, किंतु नगर की एक गली में उनका आवास था, परंतु जाति की सेवा के लिए हर समय उद्यत रहते थे । उनसे पंडित सर्वदयाल की बड़ी मित्रता थी । उनकी इच्छा न थी कि इस भ्रंशट में पड़ें, किंतु सुहृद् मित्रों ने जोर देकर उन्हें खड़ा कर दिया । पंडित सर्वदयाल ने सहायता का वचन दिया ।

ठाकुर हनुमंतरायसिंह जातीय सेवा के अभिलाषी तो थे, परंतु उनके वचन और कर्म में बड़ा अंतर था । उनकी जातीय सेवा व्याख्यान भाड़ने, लेख लिखने, और प्रस्ताव पास कर देने तक ही सीमित थी । इससे परे जाना वे अनावश्यक ही न समझते थे, बल्कि स्वार्थ-सिद्ध होता हो तो, अपने वचन के विरुद्ध कार्य करने से भी न झिझकते थे । इस बात से पंडित सर्वदयाल भली भाँति परिचित थे । इसलिए उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया, कि परिणाम चाहे कैसा ही क्यों न हो, ठाकुर साहब को

मेम्बर न बनने दूँगा। इस पद के लिए वे लाला हशमतराय को अधिक उपयुक्त समझते थे।

रविवार का दिन था। पंडित सर्वदयाल की वक्तृता सुनने के लिए सहस्रों लोग एकत्र हो रहे थे। विज्ञापन में व्याख्यान का विषय 'म्यूनिसिपल इलैक्शन' था। पंडित सर्वदयाल क्या कहते हैं, यह जानने के लिये लोग अधीर हो रहे थे। लोगों की आँखें इस ताक में थी, कि देखे पंडित जी सत्य को अपनाते हैं या झूठ की ओर झुकते हैं? न्याय का पत्र लेते हैं या रुपये-पैसे का। इतने में पंडित जी प्लेटफार्म पर आये। हाथों ने तालियों से स्वागत किया। कान सेटफार्म की ओर लगकर सुनने लगे। पंडित जी ने कहा:—

'मैं यह नहीं कहता कि आप अमुक मनुष्य को अपना वोट दे, किंतु इतना अवश्य कहता हूँ, कि जो कुछ करे समझ सोच कर करे। यह कोई साधारण बात नहीं कि आप बेपरवाई से काम ले, और चाय की प्यालियों पर, बिस्कुट की तश्तरियों पर और तौंगे की सैर पर वोट दे दें, अथवा जाति-विरादरी व साहूकारों के ठाठ-बाट पर लट्टू हो जायें। इस वोट का अधिकारी वह मनुष्य है, जिसके हृदय में करुणा हो, देश और जाति की सहानुभूति हो, जो जाति के साधारण और छोटे लोगों में धूमता हो, जो जाति को ऊँचा उठाने में दिन-रात मग्न रहता हो, जो भोग और विपुच्छिका के दिनों में रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करता हो और अकाल के समय कंगालों को सांत्वना देता हो, जो सब्जे अर्थों में

देश का हितैषी हो और लोगों के हार्दिक विचारों को स्पष्टतया प्रकट करने और उनके समर्थन करने में निर्भय और पक्षपात रहित हो। ऐसा मनुष्य निर्धन होने पर भी चुनाव का अधिकारी है, क्योंकि यही भाव उसके भविष्य में उपयोगी सिद्ध होने में प्रमाण है।'

ठाकुर हनुमन्तरायमिह को पूरा पूरा विश्राम था कि पंडित जी उनके पक्ष में बोलेंगे, परंतु व्याख्यान सुनकर उनके मन में आग लग गई। कुछ मनुष्य ऐसे भी थे, जो पंडित जी की लोकप्रियता देखकर उनसे जलते थे। उनको मौका मिल गया; ठाकुर साहब के पास जाकर बोले—'क्या बात है? यह आपका अन्न खाकर आप ही के विरुद्ध बोलने लग गया।'

ठाकुर साहब ने उत्तर दिया—'मैंने उसके साथ कोई बुरा व्यवहार नहीं किया, न जाने उसके मन में क्या समाई है।'

एक आदमी ने कहा—'कुछ घमण्डी है।'

ठाकुर साहब ने जोश में आकर कहा—'मैं उसका घमण्ड तोड़ दूंगा।' कुछ देर पीछे पंडित सर्वदयाल बुलाये गये। वे इसके लिए पहले ही से उद्यत थे। उनके आने पर ठाकुर साहब ने कहा—'क्यों पंडित साहब! मैंने क्या अपराध किया है?'

पंडित सर्वदयाल का हृदय धडकने लगा, परंतु साहस से बोले—'मैंने कब कहा है कि आपने कोई अपराध किया है।'

'तो इस वक्तृता का क्या तात्पर्य था?'

‘यह प्रश्न सिद्धान्त का है ।’

‘तो मेरे विरुद्ध व्याख्यान देगे आप ?’

पंडित सर्वदयाल ने भूमि की ओर देखते हुए उत्तर दिया—‘मैं आपकी अपेक्षा लाला हशमतराय को मेम्बरी के लिए अधिक उपयुक्त समझता हूँ ।’

‘यह सौदा आपको बहुत महँगा पड़ेगा ।’

• पंडित सर्वदयाल ने सिर ऊँचा उठाकर उत्तर दिया—‘मैं इसके लिए सब कुछ देने को तैयार हूँ ।’

ठाकुर साहब इस साहस को देखकर दंग रह गये और बोले—
‘नौकरी और प्रतिष्ठा दोनों ?’

‘हाँ, नौकरी और प्रतिष्ठा दोनों ।’

‘उस तुच्छ, उद्धत, कल के छोकरे हशमतराय के लिए ?’

‘नहीं, सचाई के लिए ।’

ठाकुर साहब को खयाल न था कि बात इतनी बढ़ जायगी; न ही उनका यह विचार था कि इस विषय को इतनी दूर ले जाये । परंतु जब बात बढ़ गई, तो पीछे न हट सके, गर्ज कर बोले—‘यह सचाई यहाँ न निभेगी ।’

पंडित सर्वदयाल को कदाचित् कोमल शब्दों में कहा जाता तो सम्भव है, वे हठ को छोड़ देते । परंतु इस अनुचित दबाव को वे न

सह सके। धमकी के उत्तर में उन्होंने ऐंठकर कहा—‘गेसी निभेगी कि आप देखेंगे।’

‘क्या कर लोगे ? क्या तुम समझते हो, कि तुम्हारी इन चकन्तुताओं से मैं मेम्बर न बन सकूँगा ?’

‘नहीं। यह बात तो नहीं समझता।’

‘तो फिर तुम अकड़ते किस बात पर हो ?’

‘यह मेरा कर्त्तव्य है। उसे पूरा करना मेरा काम है। फल परमेश्वर के हाथ में है।’

ठाकुर साहब ने मुँह मोड़ लिया। पंडित सर्वदयाल तोंगे में जा बैठे और कोचवान से बोले—‘चलो।’

इसके दूसरे दिन पंडित सर्वदयाल ने त्यागपत्र भेज दिया।

संसार की गति विचित्र है। जिस सचाई ने उन्हें एक दिन सुख-संपत्ति के दिन दिखाये थे, उसी सचाई के कारण उन्हें नौकरी से जवाब मिला। नौकरी करते समय पंडित सर्वदयाल प्रसन्न हुए थे, छोड़ते समय उससे भी अधिक प्रसन्न हुए।

जब लाला हशमतराय ने यह समाचार सुना तो अवाक् रह गये। वह भागे भागे पंडित सर्वदयाल के पास जाकर बोले—‘भाई, मैंने मेम्बरी छोड़ी, तुम अपना त्यागपत्र लौटा लो।’

पंडित सर्वदयाल के मुख-मंडल पर एक अपूर्व तेज की आभा दमकने लगी, जो इस मायावी संसार में कदाचित् ही कहीं

देख पड़ती है । उन्होंने धैर्य और दृढ़ता से उत्तर दिया—‘यह असम्भव है ।’

‘क्या मेरी मेम्बरी का इतना अधिक खयाल है ?’

‘नहीं, यह कर्त्तव्य का प्रश्न है ।’

लाला हशमतराय निरुत्तर होकर चुप हो गये । सहसा उन्हें विचार हुआ कि ‘रफ़ीक-हिन्द’ पंडित जी को अत्यंत प्रिय है, मानो वह उनका प्यारा बेटा है । धीर-भाव से बोले—‘रफ़ीक-हिन्द को छोड़ दोगे ?’

‘हाँ, छोड़ दूँगा ।’

‘फिर क्या करोगे ?’

‘कोई काम कर लूँगा, परंतु सचाई को न छोड़ूँगा ।’

‘पंडित जी ! तुम भूल रहे हो । अपना सब कुछ गँवा बैठोगे ।’

‘सच तो बचा रहैगा, बस मैं यही चाहता हूँ ।’

लाला हशमतराय ने देखा कि अब कुछ और कहना निष्फल है, चुप होकर बैठ गये, इतने में ठाकुर हनुमंतराय के एक नौकर ने आकर पंडित सर्वदयाल के हाथ में एक लिफ़ाफ़ा रख दिया । उन्होंने खोलकर पढ़ा और कहा—‘मुझे पहले ही आशा थी ।’

लाला हशमतराय ने पूछा—‘क्या है ? देखूँ ।’

‘त्यागपत्र स्वीकृत हो गया ।’

७

ठाकुर हनुमंतरायसिंह ने सोचा, यदि अब भी सफलता न हुई तो नाक कट जायगी । धनवान पुरुष थं, थैली का मुँह खोल दिया । मित्र और लोलुप खुशामदियों की सम्मति से कारीगर हलवाई बुलवाये गये और चूल्हे गर्म होने लगे । तोंगे दौड़ने लगे और वोटों पर पौण्ड निछावर होने लगे । अब तक ठाकुर साहब का घमंडी सिर किमी के आगे न झुका था । परंतु इलैक्शन क्या आया, उनकी प्रकृति ही बदल गई । अब कंगाल से कंगाल आदमी भी मिलता तो मोटर रोक लेते और हाथ जोड़कर नम्रता से कहते— 'कोई सेवा हो तो आज्ञा दीजिए, दास उपस्थित है ।' कदाचित् ठाकुर साहब का विचार था कि लोग इस प्रकार बश मे हो जायेंगे । परंतु यह उनकी भूल थी । हाँ, जो लालची थं वे दिन रात ठाकुर साहब के घर मिठाइयों उडाते और मन मे प्रार्थना करते कि काश, गवर्नमेन्ट नियम बदल दे और इलैक्शन हर तीसरे महीने हुआ करे ।

परंतु लाला हशमतराय की ओर से न कोई तोंगा दौड़ता था, न लड्डू बँटते थे । हाँ, दो चार सभाये अवश्य हुई जिनमे पंडित सर्वदयाल ने धाराप्रवाह व्याख्यान दिये, और प्रत्येक रूप से यह सिद्ध करने का यत्न किया कि लाला हशमतराय से बढकर मेम्बरी के लिए और कोई आदमी योग्य नहीं ।

इलैक्शन का दिन आ पहुँचा । ठाकुर हनुमन्तरायसिंह और लाला हशमतराय दोनों के हृदय धड़कने लगे, जिस प्रकार परीक्षा का परिणाम निकलते समय विद्यार्थी अधीर हो जाते हैं । दोपहर

का समय था। पर्वियों की गिनती हो रही थी। ठाकुर हनुमंतराय के आदमी फूलों की मालाएँ, विक्टोरिया वैण्ड, और आतिशबाजी के गोले लेकर आये थे। उनको पूरा विश्वास था कि ठाकुर साहब मੈम्बर बन जायेंगे। और विश्वास का कारण भी था, क्योंकि ठाकुर साहब का पच्चीस हजार उठ चुका था। परंतु परिणाम निकला तो उनकी तैयारियाँ धरी-धराई रह गई। लाला हशमताराय के वोट अधिक थे।

इसके पंद्रहवे दिन पंडित सर्वदयाल रावलपिडी को रवाना हुए। रात्रि का समय था, आकाश तारों से जगमगा रहा था। इसी प्रकार की रात्रि थी, जब वे रावलपिडी से अम्बाले को आ रहे थे। किंतु इस रात्रि और उस रात्रि में कितना अन्तर था ! तब हर्ष से उनका चेहरा लाल था, आज नेत्रों से उदासी टपक रही थी। भाग्य की बात, आज सूट भी वही पहना हुआ था, जो उस दिन था। उसी प्रकार कमरा खाली था, और एक यात्री एक कोने में पड़ा सो रहा था।

पंडित सर्वदयाल ने शीत से बचने के लिए हाथ जेब में डाला तो कागज़ का एक टुकड़ा निकला, देखा तो वही कागज़ था जिस पर एक वर्ष पहले उन्होंने बड़े चाव से लिखा था:—

पंडित सर्वदयाल बी० ए०, पडीटर रफ़ीक-हिन्द, अम्बाला।

उस समय इसे देखकर आनन्द की तरंगें उठी थीं, आज शोक छा गया। उन्होंने इसके टुकड़े टुकड़े कर दिये और कंबल

ओढ़ कर लेट गये । परंतु नीद न आई ।

८

कैसी शोकजनक और हृदयद्रावक घटना है, जिसकी योग्यता पर समाचार-पत्रों में लेख निकलते हों, जिसकी वक्तृताओं पर वाग्मिता निष्ठावर होती हो, जिसका सत्यस्वभाव अटल हो, उसको आजीविका चलाने के लिए केवल पाँच सौ रुपये की पूँजी से दुकान करनी पड़े । निस्सन्देह, यह सभ्य-समाज का दुर्भाग्य है ।

पंडित सर्वदयाल को दफ्तर की नौकरी से घृणा थी और अब तो वे एक वर्ष एडीटर की कुर्सी पर बैठ चुके थे—‘हम और हमारी सम्मति’ का स्वाद चख चुके थे, इसलिए किसी और नौकरी को मन न मानता था । कई समाचार-पत्रों में प्रार्थना-पत्र भेजे परंतु नौकरी न मिली । विवश होकर उन्होंने एक दुकान खोली, परंतु दुकान चलाने के लिए जो चाले चली जाती हैं, जो झूठ बोले जाते हैं, जो अधिक से अधिक मूल्य बतला कर उसको कम से कम कहा जाता है, इससे पंडित सर्वदयाल को घृणा थी । उनको मान इस बात का था कि मेरे यहाँ सच का सौदा है । परंतु संसार में इस सौदे के ग्राहक कितने हैं ? उनके पिता उनसे लड़ते थे, भगड़ते थे, गालियाँ देते थे । पंडित सर्वदयाल यह सब कुछ सहन करते थे, और चुपचाप जीवन के दिन गुजारते थे । उनकी आय इतनी न थी कि पहले की तरह तड़क भड़क से रह सके । इसलिए न कालर नेकटाई लगाते थे, न पतलून पहनते थे । बालों में तेल डाले महीनों बीत जाते थे, परंतु उन्हें

कोई चिन्ता न थी। घर में गाय रखी हुई थी, उसके लिए चारा काटते थे, सानी बनाते थे। कहार रखने की शक्ति न थी, कूँ से पानी आप भरते थे। उनकी स्त्री चर्खा कातती थी, कपड़े सीती थी, और घर के अन्य काम-काज करती थी, कभी कभी लड भी पड़ती थी। परंतु सर्वदयाल चुप रहते थे।

प्रातःकाल का समय था। पंडित सर्वदयाल अपनी दुकान पर बैठे रफ़ीक-हिन्द का नवीन अंक देख रहे थे, और रह रह कर अफ़सोस कर रहे थे। जैसे एक बाग़वान सिरतोड़ परिश्रम कर फूलों की क्यारियों तैयार करे, और उनको कोई दूरारा माली नष्ट कर दे।

इतने में उनकी दुकान के सामने एक मोटरकार आकर रुकी, और उसमें से ठाकुर हनुमन्तरायसिंह उतरे। पंडित सर्वदयाल चौंक पड़े। खयाल आया—‘आँखे कैसे मिलाऊँगा। एक दिन वह था जब इनमें प्रेम का वास था, परंतु आज उसी स्थान पर लज्जा का निवास है।’

ठाकुर हनुमन्तराय ने पास आकर कहा—‘अहा ! पंडित जी बैठे हैं। बहुत देर के बाद दर्शन हुए। कहिए, क्या हाल है?’

पंडित सर्वदयाल ने धीरज से उत्तर दिया—‘अच्छा है। परमात्मा की कृपा है।’

‘यह दुकान अपनी है क्या?’

‘जी, हों।’

‘कब खोली ?’

‘आठ मास के लगभग हुए हैं ।’

ठाकुर साहब ने उनको चुभती दृष्टि से देखा और कहा—
‘यह काम आपकी योग्यता के अनुकूल नहीं है ।’

पंडित सर्वदयाल ने बेपरवाई से उत्तर दिया—‘संसार मे बहुत से मनुष्य ऐसे हैं, जिनको वह करना पड़ता है जो उनके योग्य नहीं होता । मैं भी उनमे से एक हूँ ।’

‘आमदनी अच्छी हो जाती है ?’

पंडित सर्वदयाल उत्तर न दे सके । सोचने लगे, क्या कहूँ । वास्तव मे बात यह थी कि आमदनी बहुत ही थोड़ी थी । परंतु इस सचाई को ठाकुर साहब के संमुख प्रकट करना उचित न समझा । जिसके सामने एक दिन गर्व से सिर ऊँचा किया था और मान-प्रतिष्ठा को इस प्रकार पाँव से ठुकरा दिया था, मानो वह मिट्टी का तुच्छ ढेला हो, उसके सामने पश्चात्ताप न कर सके और उन्होंने यह कहना उचित न समझा कि हालत खराब है । सहसा उन्होंने सिर ऊँचा किया और धीर भाव से उत्तर दिया—‘निर्वाह हो रहा है ।’

ठाकुर साहब दूसरे के हृदय को भाँप लेने मे बड़े चतुर थे; इन शब्दों से सब कुछ समझ गये । सोचने लगे कैसा सूरमा है, जो जीवन के अन्धकारमय जंगलों में भी सुमार्ग से इधर-उधर नहीं हटता । चोट पर चोट पड़ती है, परंतु हृदय सच के सौदे को नहीं छोड़ता । ऐसे ही पुरुष हैं जो विपत्ति की वेगवती नदी मे सिंह की नाई सीधे

तैरते हैं, और अपनी आन पर धन और प्राण दोनों को निह्नाकर कर देते हैं। ठाकुर साहब ने जोश से कहा—‘आप धन्य हैं।’

पंडित सर्वदयाल अभी तक यही समझे हुए थे कि ठाकुर साहब मुझे जलाने के लिए आए हैं, परंतु इन शब्दों से उनकी शंका दूर हो गई। अन्धकारावृत आकाश में किरण चमक उठी। उन्होंने ठाकुर साहब के मुख की ओर देखा, वहाँ धीरता, प्रेम, लज्जा तथा पश्चात्ताप का रंग झलकता था। आशा ने निश्चय का स्थान ले लिया। सकुचाये हुए बोले—‘यह आपका अनुग्रह है। मैं तो ऐसा नहीं समझता।’

ठाकुर साहब अब न रह सके। उन्होंने पंडित सर्वदयाल को गले से लगा लिया और कहा—‘मैंने तुम पर बहुत अन्याय किया है। उसे क्षमा कर दो। रफीक-हिन्द को सँभालो, आज से मैं तुम्हें छोटा भाई समझता हूँ। परमात्मा करे तुम पहले की तरह सच्चे, विश्वासी, न्यायप्रिय और दृढ़ मनुष्य बने रहो, मेरी यही कामना है।’

पंडित सर्वदयाल अवाक् रह गये। वे न समझ सके कि यह स्वप्न है अथवा सचमुच ही भाग्य ने फिर पल्टा खाय है। आश्चर्य से ठाकुर साहब की ओर देखने लगे।

ठाकुर साहब ने अपने कथन को जारी रखते हुए कहा—‘मैंने हज़ारों मनुष्य देखे हैं जो कर्त्तव्य और धर्म पर दिन-रात लेक्चर देते नहीं थकते, परंतु जब परीक्षा का समय आता है, सब कुछ भूल जाते हैं। एक तुम हो, जिसने इस जादू पर विजय प्राप्त

की है। उस दिन तुमने मेरी बात रद्द कर दी थी किंतु आज यह न होगा। तुम्हारी दुकान पर बैठा हूँ, जब तक हाँ न कहोगे यहाँ से न हिलूँगा।’

पंडित सर्वदयाल की आँखों में आँसू झलकने लगे। गर्व ने ग्रीवा झुका दी। तब ठाकुर साहब ने सौ सौ रुपये के दस नोट बटुए में से निकाल कर उनके हाथ में दिये, और कहा—‘यह तुम्हारे साहस का पुरस्कार है। तुम्हें स्वीकार करना होगा।’

पंडित सर्वदयाल अस्वीकार न कर सके।

ठाकुर हनुमन्तराय जब मोटर में बैठे तब उनके पुलकित नेत्रों में आनन्द का नीर झलकता था, मानो कोई निधि हाथ लग गई हो। उनके साथ एक अँगरेज मित्र बैठा था। उसने पूछा—‘वैल, ठाकुर साहब, इस दुकान में क्या ठा जो दुम लम्बा डेर खड़ा मांगटा।’

‘वह चीज़, जो और किसी भी दुकान पर नहीं।’

‘कौन-सा?’

‘सच का सौदा।’

परंतु अँगरेज इससे कुछ न समझ सका।

मोटर चलने लगी।

श्री गोविंदवल्लभ पंत

जीवन-परिचय

पंत जी का जन्म अल्मोडा में संवत् १९२६ वि० में हुआ था ।
अब आप ए० वी० स्कूल रानीखेत में अध्यापक हैं । आप चलते कवि,
नाटककार और गल्पलेखक हैं । हिंदी की प्रायः सभी मासिक-पत्रिकाओं
में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं ।

इनकी रचनाओं में छायावाद की झलक रहती है । कल्पना
की उड़ान के साथ साथ इनकी भाषा सरल, सरस तथा काव्यमयी
होती है ।

‘जूटा आम’ इनकी उत्कृष्ट कहानी है ।

जूठा आम

माया केवल हँस देती थी। मेरे प्रश्नों का मुझे सदा यही उत्तर मिलता था। जब वह मेरे सामने से चली जाती थी, तब मैं उसके हास्य में अपने अर्थ को टटोलता था। भ्रात भिखारी भी उस दिन में, जो उसके लिए रात के समान है, क्या इसी तरह अपना पथ खोजता होगा ?

मैं एक भग्न कुटीर में रहता था। सामने ही उसकी सुविशाल अट्टालिका थी। उस प्रासाद की सर्वोच्च मंजिल के बरामदे में चिकें पड़ी हुई थीं। शायद माया अपने दो हाथों से कभी-कभी एकाध तीलियाँ तोड़ दिया करती थी। चिक का एक कोना खुल गया था। उसी कोने से, उसी की लापरवाही से एक दिन मैंने उसे देख लिया। वह एक दिन वहाँ पर फिर आई, मैंने फिर देखा। मैं उसे पहचान गया, वह मुझे पहचान गई।

इसके बाद वह वहाँ नित्य कुछ देर के लिए आती थी। मैं बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता था। प्रतीक्षा कभी विफल न गई।

मैंने जितनी बार उसके स्वर्गीय रूप के दर्शन किए, उतनी ही बार उसमें कुछ-न-कुछ नवीनता अवश्य पाई। उसका विश्वमोहन हास्य मुझे अपने नाम की तरह खूब अच्छी तरह याद है, किंतु मुझे याद क्या, मालूम भी नहीं, उसका कंठ कितना करुण और कोमल था।

मैं उसकी वाणी को सुनने के लिए बड़ा ही उत्सुक था, किंतु वह पाषाण—नहीं, नहीं, सुवर्ण की प्रतिमा—कभी बोली ही नहीं। मैंने बड़े-बड़े उपाय किये, पर उसके अधरों से मुस्कान निकली, शब्द नहीं निकले, चित्र देखा, संगीत नहीं सुना, भाव मिला, अर्थ नहीं पाया, मेरे नेत्र कृतकृत्य हुए, कान अतृप्त ही रहे। कभी कभी मेरे कर्णद्वय मुझ से कानाफूसी कर कहने लगे—‘तू बहरा तो नहीं है?’

२

जो भी हो, लोग कहते हैं—जीवन की सब से प्रिय वस्तु, सब से मनोहर घटना अच्छी तरह याद रहती है, पर मुझे वह भयानक संध्या अभी-की-तरह खूब याद है।

आह! वह ग्रीष्म की संध्या थी। तापतप्त भूमि पर पानी छिड़ककर मैं भोजन बना रहा था। अचानक सूर्योदय हुआ, चिक के पास मुझे माया दिखाई दी। वह आम चूस रही थी। आम

मधुर था, उससे हजार गुना माधुर्य माया की मुस्कान मे था । होठों मे ऐसी माधुरी रखकर भी माया न जाने क्यों आम चूस रही थी ।

माया ने आम चूस चूसकर उसके छिलके दूर फेक दिये । वह जानती थी, यदि उसके भूठे आम का एक भी छिलका मेरी रसोई मे गिर जाय तो वह अपवित्र हो जायगी । मैं समझता था, यदि उसका एक भी भूठा छिलका मेरी रसोई मे गिर जाय तो वह पवित्र हो जायगी ।

माया गुठली चूस रही थी । अचानक ! गुठली उसके मुँह से फिसल गई । माया को एकाएक यह ध्यान हुआ कि वह गुठली मेरी रसोई मे गिरेगी । वह उसको सम्हालने को बढ़ी । गुठली गिरी, उसी के साथ माया भी । माया की असावधानी से गुठली गिरी और विश्व की असावधानी से माया । संसार ! क्या माया अब तेरे किसी काम की न थी । उस कलिका का अभी विकास भी कहाँ हुआ था मूढ़ !

गुठली और माया मेरे समीप कठोर भूमि पर गिर पड़े । मेरे ऊपर वज्र गिर पडा । मैंने देखा, माया मूर्च्छित हो गई थी ।

क्षण भर में ही उसके माता-पिता वहाँ पर दौड़े आये । पंखा करने पर माया ने आँखें खोलीं, सब के प्राण मे प्राण आये । माया ने अधर खोले, मुझे जीवन मिला, अधरों मे कंपन हुआ, माया ने कहा—‘गुठली जूठी नहीं थी ।’ इसके बाद माया ने होठ बंद कर लिये, आँखे बंद कर लीं । फिर माया कुछ न बोली । उसके वह स्वर अंतिम हुए । माया सदा को चली गई ।

चारों ओर से 'गुठली जूठी नहीं थी' यही प्रतिध्वनित हो रहा था। जड़-जीव एक-एक कर मुझ से कहने लगे—'गुठली जूठी नहीं है।' सारा संसार एक स्वर से कहने लगा—'गुठली जूठी नहीं है।'

माया फिर कही नहीं दिखाई दी। बहुत दिन तक उसकी खोज में इधर-उधर पागलों की तरह घूमता रहा, कहीं उसका निशान नहीं मिला।

संसार में जब मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं रहा, तब मैं उसका त्याग कर निर्जन वन में रहने लगा। माया की वह जूठी गुठली मेरी एकमात्र संगिनी थी। मैंने माया के पाने की चेष्टा की, नहीं मिली। शांति खोजी, वह भी नहीं मिली।

३

एक दिन श्याम मेघ, आकाश से वारिसिचन कर रहे थे। मैंने अपना समस्त मोह त्याग कर वह गुठली जमीन में बो दी। कुछ दिन बाद अंकुर निकल आया। मैंने अनवरत परिश्रम कर उस अंकुर की रक्षा की। कुछ दिन में वह अंकुर एक विशाल वृक्ष में परिणत हो गया।

अचानक एक मधु-वस्तु में उसमें बौर निकल आए। उस समय मैंने देखा, मानो माया अपने हास्य को लेकर आ गई है। कोकिला उसमें विश्राम कर कूकने लगी, मानो वही माया का स्वर

था । प्रत्येक बौर मे आम निकल आये, मानो माया कहने लगी—
‘आम जूठा नही है ।’

उसी वृक्ष के नीचे अब मेरी कुटी है । उस वृक्ष के ऊपर मैंने पत्तियों को घोंसला बनाने और आराम करने की आज्ञा दे रखी है । नीचे छाया मे मैं प्रत्येक तापतप्त बटोही से कुछ देर आराम करने का अनुरोध करता हूँ ।

हर साल आम की फसल मे प्रत्येक पथिक को मै एक-एक आम देता हूँ । जिस समय वे उसे खाते हैं, समझता हूँ आम जूठा नहीं है ।

साल मे एक बार आम्र-मंजरियों की आड़ से भाँक कर माया मुझे दर्शन देती है । उससे कहता हूँ—‘माया !’

वह लज्जित हो जाती है और पत्तों के घूँघट को अधिक खींच लेती है । मैं कहता हूँ—‘क्यों माया, इतनी लज्जा क्यों ?’

वह कहती है—‘अब मेरा विवाह हो गया ।’

शब्दार्थ

पृष्ठ

- ३ बंबूकार्ट-बबूकाट, इक्का
चीथकर-चीत कर, दबा कर
लड्डी-छकड़ा
- ४ भारेवाले-भार वाले, बोझा
ढोने वाले
चितौनी-चेतावनी
लीक-मार्ग का वह भाग
जिस पर गाड़ी का
पहिया चलता है
जीऊणजोगिये-जीवन
योग्य
समष्टि-समूह, यहाँ 'सक्षेप में'
सुथना-पूजासा
५ कुड़माई-सगाई

पृष्ठ

- ६ उपाधि-डिग्री; खिताब
ज़लज़ले-भूचाल, भूकम्प
गनीम-शत्रु
गैवी गोली-अज्ञात स्थान से
छूटी हुई गोली
रिलीफ-सहायता; सहायक
सेना
भटका-एक ही प्रहार में
पशु मारना
- ७ कमान-कमांड, आज्ञा
सिगड़ी-अँगीठी
विदूषक-नाटकों में मजाक
करने वाला पात्र
९ बरानकोट-फौजियों का

- खास ओवरकोट
- १० जरसी-कुर्ता की बनावट का ऊनी कपड़ा
- १२ मेस-भोजनशाला
- १३ कयामन-प्रलय
- १४ गुत्थी-थैली
- १५ कुंदा-बंदूक का दस्ता
माझा-पजाब में पट्टी, तरन-
तारन का ममीपवर्ती
इलाका
चकमा-धोका
- १६ कपालक्रिया-कपाल फोड़ना;
जलाते समय अधजले
मुर्दे का मस्तक फोड़
देते हैं
हड़का-हड़काया हुआ,
बावला
- १७ क्षपा-रात्रि
बाणभट्ट-कादंबरी का लेखक;
संस्कृत का सर्वोत्कृष्ट
गद्यलेखक
- १८ दंतधीणोपदेशाचार्य-इतनी
ठंडी हवा कि जिसमें
दाँत कटकटाने लगें;
- अर्थात् दाँतों को
वीणा के समान बजना
सिखाने वाली
- तुरत बुद्धि-प्रत्युत्पन्न मति;
मोँके को देखते ही
सूझने वाली बुद्धि
- फील्ड-युद्धक्षेत्र
- २० सालू-स्त्रियों के सिर पर
ओढ़ने का लाल खहर
का दुपट्टा
लाम-युद्ध
- २१ खिताब-उपाधि
नमकहलाली-कृतज्ञता; खाये
नमक का बदला देना
तीमियों-स्त्रियों
- २२ ओबरी-नीचे की मंजिल
की कोठरी
हाड़-आषाढ़
- २९ संचालित-चलाया गया;
(शुद्ध प्रयोग संचरित)
सानी-उपमा
- ३० लावण्यता-लावण्य, लुनाई,
चमक
ख्याति-यश

- कटाक्ष-तिरछी नजर
रजकण-धूलि का कण
- ३१ विक्टोरिया टर्मिनस
स्टेशन-बंबई में
विक्टोरिया टर्मिनस
नाम का रेल का
अंतिम स्टेशन
वाँसों उल्लुल रहा था-
अत्यधिक प्रसन्न हो
रहा था; बारा बारा हो
रहा था
- ३२ नहलाते थे-न्हिलाते थे
व्यथित-दुःखी
हृष्टपुष्ट-तकड़े
- ३३ बरगद-बड़
सुखप्रद-सुख देने वाला
फुनगियाँ-चोटियाँ
- ३४ कोल्हवाड़ा-कोल्हू
पेरी जाती थी-पेली जाती
थी
हस्तलाघव-कुशलता, तेजी,
सफाई
हृदयविदारक-हृदय को
दुखाने वाला
- ३५ अविरल-अटूट, बंद न
होने वाली, लगातार
मदिरा-शराब
विवशतः-बेबसी से
कर्कश-कठोर
रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत
की-सारी रात जागते
ही बिताई
- ३६ कमडल्लु-लोटा; साधुओं का
लोटा
प्रभावोत्पादक-असर डालने
वाला, बा-असर
- ३७ आनंदातिरेक-आनंद की
अधिकता
पतितपावनी-गिरे हुए
को पवित्र करने वाली;
गंगा माता
भागीरथी-गंगा
गायत्री मंत्र-वेद का यह
मंत्र .—
ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितु-
र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
प्रत्येक आर्य प्रातःसायं

- संध्या के समय इस मंत्र को
जपता है
- ३७ सखर-खरसहित; गाकर
अथवा उदात्त, अनु-
दात्त तथा स्वरित
आदि स्वरों के साथ
- ३८ अस्थियाँ-हड्डियाँ; हिंदू लोग
मृतकों की हड्डियाँ गंगा
में प्रवाहित करते हैं
गंगा तट पर प्राण निकलें-
हिंदुओं के मत में
गंगा तट पर मरने से
मुक्ति मिलती है ।
तुलना करो 'काश्यां
मरणान्मुक्तिः'
- ३९ कुस्तुंतुनिया-कौस्टेण्टि-
नोपल
आतंक-रोष
सखम्मान-इज्जत के साथ
- ४० मदांध-बेहोश, मतवाला
मजलिस-सभा
मानवरक्त-मनुष्य का खून
बीभत्स-ग्लानि उत्पन्न
करने वाला
- कानर-भयभीत
- ४१ इसपात-शुद्ध लोहा
अतुल-जिसकी तुलना न
हो सके
कृतघ्नता-किए हुए को न
मानना
यदि तलवार ही सभ्यता
का प्रमाण-पत्र
होती-यदि युद्ध में
विजयी होने से ही
कोई देश सभ्य कहला
सकता
- ४२ नारकी-नरक में रहने वाला
शपथ-सौगंद
तलवार सौतकर-तलवार
खींच कर; सौत=सूत
घातक-मारने वाली
- ४३ जी-जान से-पूरे प्रयत्न से,
मन से और जीवन से
स्तंभित-स्तब्ध; भय से चुप
संमोहित-मूढ़, मुग्ध,
अवाक्, आश्चर्यचकित
कुतूहलमय प्रोत्साहन-
कौतुक भरा उत्साह,

जोश

जीवन्मुक्त करके-मार कर;
जीवन्मुक्त शब्द यो-
गियों के लिये रूढ है;
यहाँ उसका प्रयोग
अयुक्त है

४४ क्या इसी बध—उज्ज्वल
करेगा-विरोधाभास;
स्याही से काला होता
है, सफेद नहीं
आत्मोत्सर्ग-आत्मा का
त्याग, जीवन का
बलिदान
परवरदिगार-खुदा, परमेश्वर
हीलहुज्जत-आनाकानी,
'ननु नच'

लालसा-चाह
अवज्ञा-नीची निगाह से
देखना; अपमान

४५ मिथ्या प्रशंसा-भूठी तारीफ,
खुरामद
अहंमन्यता-अहंकार, मैं
बड़ा हूँ यह मानना;
अहं-मैं, मन्यता-मानना

४५ निर्भीक-निडर

पैगम्बर-दूत, परमात्मा की
ओर से आया हुआ
पवित्र आत्मा

कीर्ति का परदा खोल
दिया-कीर्ति को मिट्टी
में मिला दिया

विश्वविजयिनी-विश्व=
संसार, विजयिनी=
जीतने वाली

हास्यास्पद-हास्य=हँसी,
आस्पद=योग्य

चिमट-चिपट, आलिगन
दार्शनिक-दर्शन का जानने
वाला; (न्याय, वैशेषिक,
सांख्य, योग,
मीमांसा, वेदांत का
जानने वाला)

४६ देवस्वभाव-देवताओं के
जैसे स्वभाव वाले,
पवित्रात्मा
मार्गभ्रष्ट-पथच्युत, मार्ग से
गिरा हुआ

४६ अग्निपूजक-अग्नि की पूजा करने वाला, प्राचीन काल में फारस के निवासी अग्नि को देवता मान उसकी पूजा करते थे; बर्बट के पागरी अब भी ऐसा ही करते हैं

गद्गद कंठ-कंधा हुआ गला, प्रसन्नता के साथ

४७ सत्ता-हस्ती, अस्तित्व गुणज्ञता-भद्रता; गुणों को पहचानने वाली वृत्ति अमिश्रित-न मिली हुई, कोरी, केवल बर्बरता-असभ्यता, अमानुषता

४८ अभीष्ट-अभिलषित अस्थिर चित्त-डॉवांडोल विध्वंस-विनाश आग्रह-हठ, ज़िद्द षड्यंत्र-गुप्त मंत्रणा

४९ प्रतिभा-सूक्ष्म वाली बुद्धि; तुरत-बुद्धि

दीक्षा-गुरुमंत्र

आरूढ़-स्थिर, डटे रहना ज़रदश्त धर्म-पारमियों का धर्म, जिसमें अग्नि की पूजा की जाती है अन्वेषण-खोज, ढूँढ

तुलनात्मक अध्ययन-दो वस्तुओं को, तुलना की दृष्टि से समझना फूटे न समाप्त-बहुत अधिक प्रमत्त हुए । देखो, 'बॉमों उछले'

५० सत्यनिष्ठा-सत्य में विश्वास; सत्य में स्थित होना स्वाध्याय-अध्ययन, अनुशीलन, मनन; प्राचीन काल में स्वाध्याय का अर्थ अपनी शाखा के वेद को पढ़ना होता था तलवार ही सब से बड़ा न्यायालय थी-जिस की लाठी उसकी भैंस शिक्षादीक्षा-पठन पाठन, शिक्षण

- ५० दर्शन-तत्त्वज्ञान, देखना
विज्ञान-साइंस
अध्यात्म-आत्मा के साथ
सबध रखने वाला
शास्त्र, वेदांत
सैन्यसंचालन-फौजें चलाना
एक हज़ारी पद-एक हज़ार
सिपाहियों के ऊपर
अधिकार
अरुचि-घृणा
५१ महिला-स्त्री
वैवाहिक बंधन-विवाह से
उत्पन्न होने वाला
बंधन; गृहस्थ के भगड़े
टंटे
बाधा-रोक
स्वाधीनता-स्वतंत्रता, स्व-
अपने, अधीन
अज्ञेय-न जीती जाने योग्य
५२ कल्पनातीत-न सोची जाने
योग्य; कल्पना से
अतीत=बाहर
उल्लास-आनंद
हृदय के अन्वय भंडार-प्रेम
सौम्य-नम्र तथा सुंदर
रमणी-वेष-मोहिनी-स्त्री
वेष में मुग्ध करने वाली
५३ कुत्सा-निंदा
ऊँच नीच सुभाना-भला
बुरा समभाना
५४ निष्काम-कामनारहित, जिस
में स्वार्थ न हो
स्वत्व-अधिकार
परीक्षित-जॉचा हुआ
५५ आश्वस्त न हो सकी-
भरोसा न कर सकी
सद्भाव-अच्छी भावना
सामीप्य-समीपता, निकटता
५६ विरक्त-राग-द्वेष से रहित
विलास-सभा-आमोद
प्रमोद की मजलिसें
कोमलांगी-स्त्री; कोमल
शरीर वाली
५७ आत्मग्लानि-अपने आपसे
घृणा
द्रवित हो गया-बह निकला;
पसीज गया
विब्रति-अर्ज, प्रार्थना

- ५७ दयनीय प्रार्थी-दया के योग्य माँगने वाला
 हिंसात्मक मुद्रा-कठोर मुखाकृति
 जाग्रत विवेक-जागती हुई, भले बुरे को पहचानने वाली बुद्धि
- ५८ स्फूर्ति-फडकन, क्रियात्मकता
 अहोभाग्य-सौभाग्य
 मनःतुष्टि-मन का संतोष
 आभास-प्रतीति
- ५९ आदेश-आज्ञा
 सद् प्रेरणा-सत्प्रेरणा, शुभ प्रेरणा
 दुःसाध्य-कठिन, मुश्किल से साधा जाने योग्य
 नरसंहार-मनुष्यों का विनाश
 खुदा न करे तुम्हारे दुश्मनों को कुछ हो गया तो-
 परमात्मा न करे कि कहीं शत्रु जीत जायें तो—
- ६० आहत-चोट खाया हुआ
 परास्त करके-जीत कर,
- दूर फेंक कर, तितर बितर करके
- ६१ जज़िया-मुसलमानों की ओर से विधर्मियों पर लगाया गया कर
 नियमों का क्रियात्मक विरोध-नियमों के विरुद्ध जान बूझ कर काम करना
- ६२ अधर्म-पोषण-पाप की पुष्टि
 उइंड-उद्धत, अकस्वड
- ६३ कंपन-कंपकंपी
 मानव रक्त का रंग खेले-
 मनुष्यों के खून की होली खेले
- ६५ हस्तक्षेप-हाथ डालना,
 रुकावट, दस्तदाजी
- ६६ हतबुद्धि-हक्काबक्का, अवाकू,
 जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई हो
- ६७ व्यक्तित्व-व्यक्तिता, एक व्यक्ति की हैसियत
 (यह तुम्हीं हो जिसने) आन की आन में-देखते

- देखते, बात की बात
में; जल्दी ही
- ६८ वंचित न करेंगे-उनके
अधिकार न छीनेंगे;
उन्हें उनके अधिकारों
से महकूम न करेंगे
- स्मिनहास्य-मुसकगहट भरी
हँसी
- कपोल-गाल
- युवती चेतना-जवानी
- ७० अधर-ओठ, निचला ओठ
- ७३ निरुद्देश्य-उद्देश्यरहित
अरुण-लाल
- प्रमोदगृह-क्लब
- पार्श्व-बगल
- ७४ प्रतिस्थापित-प्रतिष्ठापित,
स्थापना करके, बैठाकर
- एकनिष्ठ-एक ध्यान, एक
चित्त
- समग्र-सारा, समूचा
- शुद्ध तत्काल के प्राणी-
आगे पीछे की चिंता
न करने वाले; वर्तमान
का आनंद लेने वाले
- ७४ अविरत-अविरल, अटूट
- ७५ पितृदेव-पिता
- निरापद-आपत्तिरहित
- कुललक्ष्मी-घर के रत्न, स्त्री
- गरिमा-महिमा, बड़प्पन
- नेटिव-देशी
- ७६ नाँता-तति, पंक्ति
- इक्का-दुक्क-एक दो
- दीपमालिका-दीपमाला,
दिवाली
- घनीभूत-घनी
- ७७ शुभ्र-सफेद
- संस्मृति-संसार
- निर्भेद्य-गहरा, जो भेदा न
जा सके, जिसमें देखा
न जा सके
- बृहदाकार-विशाल
- ७८ सनक-मन की मौज
- ७९ प्रकाशवृत्त में-रोशनी के
दायरे में
- मौन-मूक-चुपचाप
- ८१ मौत से पहचान हो गई-
मर गया
- ८३ सकपका कर-अकचका

- कर, विस्मित से होकर
- ८४ असमंजस-दुविधा, क्या
करूँ क्या न करूँ
बेहयाई-बेशरमी, निर्लज्जता
- ८५ उपहार-पुरस्कार, इनाम
शय-मृतक, मुर्दा
- ८७ निर्मम-ममतारहित, शिवजी
निशुंखल-शुंखलारहित,
टूटा हुआ
विजय-विजय-विजय-
जीत-जीत-जीत;
केवल जय
अनुशीलन-मनन, विचार
- ८८ अलक्षेद्र-अलेग्जेंडर दि
ग्रेट; महान् सिकंदर;
ग्रीस का प्रख्यात
सम्राट्, जिसने भारत
पर चढ़ाई करके पोरम
के साथ युद्ध किया था
- सीज़र-रोम का प्रसिद्ध
सम्राट्, जिसकी कथा
शेक्सपीयर के जूलि-
यस सीज़र नामक
नाटक में आई है
- ८९ तत्परता-लगन
जोश्वम-विपत्ति, खतरा
- ९० अनिष्टकर-अनर्थ करने
वाली, बुरी
मनस्ताप-चिंता, शोक, मन
की तपिश
नीरव प्रकृति-शांत जगतः
निः=बिना, रव=शब्द
व्यंग मौन-व्यंग्य भरी चुप्पी
चीन्ह पड़ना था-पहचाना
जाता था, चिह्न=
पहचान का निशान;
चिह्न=संज्ञा; चीहना
क्रिया
- ९० सशंक-शकासहित
निरापद्-देखो पृष्ठ ७५
मुठ भेड़-सामना, मुट्टियों
से भिड़ना, लड़ना
आहत-देखो पृष्ठ ६०
लोहू से लुहान हो गए थे-
लोहूलुहान हो गए थे,
क्षत-विक्षत हो गए थे;
लोहू संज्ञा लुहान

- क्रिया; शतृप्रत्ययांत
 १.१ जीवन-विमर्जन-जीवन
 का त्याग, आत्म-
 बलिदान
 खेतिहर-खेतिधर, किमान
 अनिष्ट-देखो पृष्ठ ८६
 आत्मव्रत-आपे में, व्रत=
 डरा हुआ
 आत्मव्रत-आपे में, व्रत-
 डूबा हुआ, मस्त
 आत्मव्यस्त-आपे में, उखड़ा-
 पुखड़ा
 आत्मनिमग्नता-आपे में
 एकचित्त होना, निमग्न=
 डूबा हुआ
 १.२ निठल्ली-ठाली; नि=नितात
 खाली
 अनुभूति-अनुभव
 कम्क-टीस
 जर्कबर्क-चमकीला
 वैभव-ऐश्वर्य
 आवरणा-ढकना, कपड़े; आ=
 चारों ओर से, वरण=
 ढकना
 एकवारगी-एक दम; एक
 वारक=वार
 १.३ अविगल-देखो पृष्ठ ३५
 दुरकते हुए-लुढ़कते हुए,
 बहते हुए
 हृदयोत्सर्ग-हृदय का विम-
 र्जन; उत्सर्ग=त्याग
 अर्घ्य-पूजा की सामग्री
 प्रणय-प्रेम, प्र=सामने,
 नय=लाना
 निसर्गशुद्ध-स्वभावतः पवित्र
 प्रणय-रस-प्रेमरस
 आवाहन-आह्वान, बुलाना
 निर्द्वन्द्व-द्वन्द्वरहित, चिता-
 रहित, रागद्वेष, सुख
 दुःख आदि विरोधी
 जोड़ों का नाम द्वन्द्व
 है; इन द्वन्द्वों में उत्पन्न
 होने वाले क्लेश और
 चिता से रहित
 १.४ फ्रतह-विजय, जीत
 तालिका-ताली, कुंजी
 अभिभूत कर लेती है-
 दबा लेती है

- १४ त्राण-शरणा
व्यस्तता-अनियमितता,
उथल-पुथल
गहैगा-पकड़ेगा
ज्वार-जवाला, ताप
- १५ अभिन्न प्रेम-अभाषण-प्रेम की वह बातचीत,
जिममें प्रेमियों का
भेदभाव जाता रहे
वातावरण-वायुमंडल, वात=
वायु; आवरण=ढकना
- १७ चुक गया-समाप्त हो गया
उत्सर्ग-त्याग
- १६ भीने स्वर में-धीमी आवाज
में
- १०० परिधि-सीमा, दायरा,
चारदीवारी; परि=
चारों ओर, धा=रखना
अनिवार्य-न निवारण किया
जाने योग्य; अवश्य-
भावी
- तन्त्र-तौता; पसारा
आनंद के सक्रिय समारोह
में तन्मय योग देना-
- १०१ चितृष्णा-वैराग्य, विरक्ति,
तृष्णा का अभाव
स्वस-रसीला
विरागाभास-वैराग्य की
तरह दीख पड़ने वाला;
आभास=प्रतीति
दुर्धर्ष-कठोर; कठिनता से
धर्ष-दबाया जाने योग्य
उच्छृंखल-शृंखला से बाहर,
बधन रहित
संकरा-सकीर्ण, तंग
आत्मोपलब्धि-आत्मा का
लाभ, आत्मदर्शन
दायित्व-जिम्मेवारी
- १०२ विराट् उत्सर्ग-महान् त्याग
आयास-प्रयत्न
- १०३ निःशंकित आस्था-शंका
रहित विश्वास
विवेचना-छाँट वाली बुद्धि,

- विवेक बुद्धि
 १०४ भाई-परछाही
 १०६ भिक्षुराज-भिक्षुओं का राजा,
 बुद्ध भगवान्
 तरणी-तरि, नौका
 काष्ठफलक-लकड़ी के तख्ते
 अधर-नीचे
 मृद्भांड-मिट्टी के भाँडे
 भूर्जपत्र-भोजपत्र; प्राचीन
 काल में, जब कि
 कायात्र न मिलता था,
 पुस्तकें भोजपत्र पर
 लिखी जाती थी
 ११० पतवार-नाव चलाने का
 चप्पू
 पादुका-पावड़ी, खड़ाऊँ
 परिच्छद-साज औ सामान,
 कपड़े, वेषभूषा, परि=
 चारों ओर, छद=
 ढकना
 मुखमुद्रा-मुख की आकृति
 १११ अरुण अधर-लाल ओष्ठ
 सुधावर्षी-अमृत बरसाने
 वाला
- १११ बोधिवृक्ष-वह वृक्ष जिसके
 नीचे भगवान् बुद्ध को
 आत्मिक बोध हुआ था
 ११२ एकनिष्ठ-एक निष्ठा वाला,
 एकचित्त, निश्चल
 भूभाग-धरती का भाग
 ११३ अनभिज्ञ-न जानने वाला
 तथागत-बुद्ध भगवान्
 ओतप्रोत-भरा हुआ
 ज्ञानगरिमा-ज्ञान से उत्पन्न
 होने वाली महिमा
 ११४ राजनंदिनी-राजकुमारी
 जंबू-महाद्वीप-भारत
 मृदुल-कोमल
 ११५ जलगर्भस्थ-पानी में छिपी
 हुई
 अस्तव्यस्त-तितर बितर
 फलाहार-फलों का आहार,
 भोजन
 फेनराशि-भागों का ढेर
 अनिर्वचनीय-निर्वचन के
 अयोग्य, अवर्णनीय
 जलचर-तुलना करो, थल-
 चर, नभचर

- ११६ कलरव-कल=मधुर, रव=
शब्द
संयत-स्थिर
सद्धर्म-बौद्ध धर्म, मन=सुंदर
शांतं पापम्-‘अशुभ शांत
हो’ बस करो, बस
- ११७ महाव्रत-बौद्ध धर्म का व्रत
कग्द-कर देने वाला
सहोदर-एक पेट का, सगा
- ११८ कर्मठ-कर्म करने में रत,
तुलना करो कर्मठ
और कर्मण्य की
उत्तुंग-बहुत ऊँची, उत्तुंग
अरविंद-कमल
चरम-अंतिम
निर्वाण-परम धाम
- १२० ध्यानावस्थित-ध्यान में मग्न;
तुलना करो अवस्थित
और उपस्थित
पदातिक-पदाती, पद=पैर
अती=चलने वाले
वृद्धांजलि-हाथ जोड़े हुए
नत-जानु-जानु-गोडा
भुकाए हुए
- अनुचर-नौकर, पीछे चलने
वाले
वाहन-सवारी
- १२१ रत्नाभरण-रत्न और आभू-
पण
हिंस्र-हिसक, हिसाशील
गार-गुफा
- १२२ आगतुक-आया हुआ
देदीप्यमान-अत्यंत दीप्त
संभ्रांत-भ्रांत, आश्चर्य
चकित
प्रबोध-ज्ञान
- १२४ स्वर्णखचित-सोने से चीता
हुआ
- १२६ चतुर्मास करना-वर्षा के
चारों मास एक स्थान
पर बिताना; बौद्ध और
जैन सन्यासी वर्षा में
भ्रमण नहीं करते
अर्चना-पूजा
- १२७ तपश्चर्या-तपस्या
जर्जर-जीर्ण
- १२८ नेत्र मुद्रित है-आँखें बंद हैं
- १२९ शकट-गाड़ी, छकड़ा

- करने वाला; जिम्मेका
देवी देवा की पूजा में
भगोमा न हो
- गाम्य-गामता
१३० मूक न बोलने वाला
१३१ शुश्रूषा-सेवा, श्रु=भुनना,
भाजा मानना
१३२ विस्मयमागर-आश्चर्य का
समुद्र. तुलना करो
विस्मय, भय, स्मित
१३३ मन्त्रमुग्ध-चित्रलिखित, मन्त्र
से माहा हुआ
कूटर्नाति-कपट नीति
चोरी करके मीनाजोरी
करना-पाप करना
और उस पर अकड़ना
१४५ गार्ध्व विवाह-विवाह के
आठ प्रकारों में वह
प्रकार जिसमें कन्या
को पिता के घर से
हर कर, उसकी अनु-
मति पर, उससे विवाह
किया जाता है। आठ
प्रकार के विवाह :—
- ब्राह्म, दैव, आर्प, प्राजा-
पत्य, आसुर, गान्धर्व,
राक्षस और पैशाच
- १४६ पथभ्रष्ट-पथन्युत, श्रेष्ठ मार्ग
से गिरा हुआ
एक अणु भी-किंचित् भी
१४७ तस्कर-चोर
१५० अलक्षित-अलक्ष्य, अदृश्य,
छिपी हुई
१५१ नैश वायु-रात्रि की हवा
अरण्य-वन
१५२ सूतकर-तुलना करो सौत
कर, पृष्ठ ४२
पापिष्ठ-अत्यंत पापी
१५३ हस्तकौशल-हस्तलाघव
परास्त और निरस्त कर
दिया-छके छोड़ा दिए
१५४ निविड-घना
निर्वेद-खिन्नता
भंभावायु-वर्षा मिली तेज
हवा; सरदियों की
वर्षा में भाँय भाँय
करने वाली वायु
शुब्ध-आंदोलित, अशांत

- १५४ कंटकमय-काँटों से भरा
 १५५ प्रणयिनी-प्रेयसी, प्रेमिका
 १५६ कुटीर-छोटी कुटी
 १५७ शिलाकंदर-शिलाओं की
 कदरा, गुफा
 १५८ अभिनय-नाटक, अभि=
 सामने, नय=लाना
 असंगत-अनुचित
 निर्मम पापाण हृदय-ममता
 रहित पत्थर सा हृदय
 १५९ चरणशरण-चरणों की
 शरण
 १६० पर्यशय्या-पत्तों की संज
 १६१ शतसहस्र-सैकड़ों हजारों
 सत्यपाश-सत्य का बधन
 १६२ तत्र का कलंक-तंत्र की
 बुराई
 १६५ प्रियदर्शी-भव्यदर्शन, सुंदर
 आकृति वाला, सम्राट्
 अशोक की उपाधि
 मुकुल-कली
 राजप्रासाद-राजमहल
 १६६ स्थविर-बृद्ध बौद्ध भिक्षु
 अनास्था-वैराग्य
- चित्रलिखित-चित्र में लिखे
 हुए
 रंगालय-नाट्यशाला
 यवनिका-जवनिका, परदा
 १६७ मुखमुग्धा-मुख पर लट्टू
 राजमहिषी-राजा की रानी;
 महिषी=पटरानी
 विमाता-सौतेली माता
 १७० नूपुर-बिछुए
 कवरी-स्त्रियों के सिर के
 बाल
 १७१ निष्ठुर-कठोर
 आनंदामृतपूर्ण-आनंद के
 अमृत से भर पूर
 रात्रिकिकासी-रात में खिलने
 वाले
 १७२ निस्तब्ध-शांत
 सौधावली-महलों की पक्ति
 हस्तिशाला-हाथी बाँधने की
 जगह
 क्रंदन-रुदन, यहाँ आवाज
 रोमांच-सुख या दुःख की
 अधिकता में शरीर के
 रोमों का खड़ा होना

- १७७ वधिक-बहेलिया १०९ शैलमाला-पहाडों की पंक्ति
 १७८ जूझना-युद्ध करना भैरव रणचडी-भयंकर
 पल्लव-पत्ते रणदेवी
 लाल रंग-क्रांतिकारियों का २०० राजचिह्न-चामर, छत्र
 झंडा लाल रंग का २०१ प्रतिशोध-बदला
 है। वे स्वतंत्रता प्राप्ति २०२ स्वर्गादपि गरीयमी-भर्वा
 के लिये रक्त में, रुधिर से भी अच्छी गरी-
 में और हिंसा में यमी=गुरुतर
 विश्वास रखते हैं पदप्रक्षालन-पैर पखारना
- १७९ मवेशीखाना-पशुशाला २०३ कलकल-मधुर
 घनिष्ठता-गाढ प्रेम कष्टों का अनंत पारावार-
 १८० जटिल-कठोर क्लेशों का समुद्र
 १८१ निरंकुश-बेलगाम; अंकुश २०४ विकल-बेचैन
 रहित २०७ जीवन नैया-जीवन की
 १८३ सहृदयता-समवेदना नौका
 १८४ भूँजी भाँग-भुनी भाँग, ग्रामीण-गाँव के
 (नाम को भी सामग्री वारी-बाड़ी
 न थी) २०८ पत्रिक (पैत्रक) व्यवसाय-
 १८७ कुचक्र-बुरी मंत्रणा, षड्यंत्र पिता का धंधा
 १९२ निरीहता-निश्चिंता दुर्वह भार-कठिनता सं
 १९४ अपशकुन-असगुन, बुरे ढोया जाने वाला भार
 लक्षण २०९ सतर्क-सावधान
 १९८ शिविर-सेना का कैंप झुरमुट-भुंड, भाड़ी
 नादान दिल-अबोध इहलोक-परलोक-यह लोक

और दूमरा लोक	प्रखर-प्रचंड
शून्य-आकाश	पनशाला-प्याऊ
२१० वंदेही-सीता, मिथिला के राजा विदेह जनक की पुत्री	क्षितिज-वह रेखा जहाँ पर धरती और आकाश मिलते दीखते हैं
धरणी-पृथ्वी, धारण करने वाली	२१४ अनुमति-सलाह, तुलना करो समति, विमति
नदराज-महादेव, तांडव नृत्य करने वाले	त्याज्य-छोड़ने योग्य
रुग्ण-रोगिणी, बीमार	२१५ गिसना-बहना, चूना अनुज-छोटा भाई
२११ महाकाल-मृत्यु देव दिगंत-दिशाओं का छोर, दूर दूर तक	२१६ लुढ़कना-डुलकना; देखो पृष्ठ ६३
भास्कर-सूर्य, प्रकाश करने वाला	शेषनाग-सर्पों का राजा
धरित्री-देखो धरणी, पृष्ठ २१०	२२१ उभय-पक्ष-दोनों ओर
मलयजशीतला-चंदन की नाई ठडी	२२४ ढलका रहा था-ढाल रहा था, बंद कर रहा था
शस्यस्यामला-खेती से हरी हरी	२२५ शहनाई-नकरी बाजा, एक प्रकार का बाजा
आवेश-आवेश	चैं-चैं-में-में-कोलाहल
दुव-दुबड़ा, घास	तलवरिया-तलवार का धनी
२१२ दिनकर-भास्कर, सूर्य	आर्ट-कला
	खमखम-खचाखच
	२२६ चिलचिलाती-कड़कती
	लमहे भर-क्षण भर

- २२७ हुलिया-सूरत-शकल
खगव-खस्ता-जीर्ण
- २२८ नजर-अंदाज-दृष्टि से
ओभल, ध्यान न देकर
हिरासत-कारावास
कानाफूसी-धीरे से एक
दूसरे के कान में बात
कहना
बदलगाम-बकवादी
- २२९ घिघियाकर-गिड़गिड़ाकर,
करुण स्वर से प्रार्थना
करके
ज़न्-ज़न्-सॉय सॉय
- २३० चमक कर-आश्चर्य से
चौककर
- २३१ निस्तब्धता-सन्नाटा
जाँ-निसार-जीवन उत्सर्ग
करने वाला, जान
निष्ठावर करने वाला
- २३५ तड़क भड़क-शान-शौकत
- २३७ आजीविका-वृत्ति, रोखी
लौंडे-लड़के
निकम्मा-बेकार
त्रैज्यपट-बी० ए० पास
- ट्रिब्यून-लाहौर का अंग्रेजी
अखबार
- वांटेड कालम-आवश्यकता
के विज्ञापनों का स्थान
- २३८ रीझ गया-ललचा गया
- २३९ आशा-कल्पनाएं-आशा-
पूर्ण विचार
भठवाड़ा-आठ दिन्न
चाट-राह
हताश-ना-उम्मेद
- २४० डिगरियाँ-उपाधियाँ
दूभर-भारी
टाईटल-मुखपृष्ठ
चटनी-खटाई-वाला खाद्य
पदार्थ
- २४१ चिहुक उठे-चौक पड़े,
आश्चर्यान्वित हुए
कर्ण-कुहर-कानो के पर्दे
- २४२ मुक्का-मुष्टि
बेग-छोटा बक्स
चग्धी-गाड़ी
आलीशान-विशाल तथा
सुदर
- २४३ राह में-मार्ग में

- २४४ धड़कते हृदय-धक धक करते हुए हृदय
आश्चर्यमयी-अद्भुत
- २४५ चिहुक कर-आश्चर्यान्वित
होकर, चौंककर
- २४६ गुच्छा-पुज, समूह
कुसुम-कलिका-फूल की
कली
- चटक-चटक कर-खिल
खिल कर
- मोहिनी वासना-मस्त कर
देने वाली सुगन्ध
शान-ठाट-बाट, सज-धज
- पराकाष्ठा-चरम सीमा
- २४७ परखने के लिए-जाँचने के
लिए
- समालोचना-गुण-दोष-
विवेचना
- २४८ तृषित नेत्रों से-प्यासी
आँखों से
- मेम्बर-सदस्य
आवास-घर
- व्याख्यान भाड़ने-व्याख्यान
देने, वक्तृता करने
- २४९ वक्तृता-लैकचर, व्याख्यान
इलैकशन-चुनाव
अधीर-बेचैन, व्याकुल
प्लेटफार्म-व्याख्यान-वेदी
विषूचिका-हैजा
अकाल-दुर्भिक्ष
- २५१ उद्धत-अवरवद्ध
- २५२ पेंडकर-अकड़ कर
मुँह मोड़ लिया-चुप हो गए
अवाक्-चुपचाप
मुख-मंडल-मुँह
मायावी-कपटी
- २५३ गंवा बैठोगे-खो बैठोगे
- २५४ नाक कट जायगी-प्रतिष्ठा
नष्ट हो जायगी
पौण्ड-गिनी
- धाराप्रवाह-जल के बहाव
की तरह तीव्र गति से
- २५६ हृदयद्रावक-दिल दहला
देने वाली
- वाग्मिता-वाक्शक्ति
एडीटर-सम्पादक
स्वाद चख चुके थे-रस का
अनुभव कर चुके थे

२५७ सानी-खली और पानी	तापनत-धूप में तपी हुई
आदि में स्नान कर	२६५ कलिका-कली
पशुओं को देने का	विकास-खिलना
भोजन	२६६ मंगिनी-माथिन
कहाग-पानी भरने वाला	श्याम भेद्य-काले बादल
२६० बेल-अच्छा	घागि भिचन-पानी का
डुकान-दुकान	सीचना; यहाँ पर
ठा-था	त्रपा
टुम-तुम	२६७ बौर-आम के फूल
लम्बा डेर-बहुत देर तक	आम्र-मंजरी-आम के फूलों
२६४ खड़ा मांगटा-खड़े रहे	का गुच्छा
कर्णद्वय-दोनों कान	भाँक कर-देखकर

गल्प-पारिजात में आए हुए

कुछ मुहावरे

पृष्ठ

३ कान पकना

नाक की सीध चलना

४ महीन मार करना

८ खिलखिलाना

देस देस की चाल है

१० कँपनी छूट रही है

- १३ ज़ग तो आँख लगने दी होती
 १४ पत्ता तक न खड़के
 १५ उसे चकमा देने के लिये चार आँखें चाहिएं
 ,, खेत रहे थे
 १७ चक्की के पाटों के बीच में आना
 १८ ज्वर में बरी रहता था
 २१ आज नमकहलाली का मौका आया है
 २२ तुम्हारे आगे आँचल पमागती हूँ
 २६ सौंदर्य में अपना सानी आप ही थी
 ३० मैं अपनी मातृभूमि का रज-करण बनूँ
 ,, मेरे हृदय में काँटा-सा खटकना रहता था
 ,, बालपन के लँगोटिए याग
 ३१ यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था
 ,, स्वर्ग को मात कर रहा था
 ३४ पिता जी हँसी-रूहरूहे उड़ाते थे
 ३६ रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत की
 ४० जवानी की लगाम खींच रहा था
 ४१ रक्त के घूँट पीकर बोला
 ४२ दम-के-दम में
 ,, जैसे मौत को अपनी दोनों बँधी हुई मुट्टियों में
 मसलता हुआ
 ४३ जिसकी अभी मर्से भी न भीगी थीं
 ४४ इसके दिमाग में कुछ गड़-बड़ है

- ४५ उसकी अहमन्यता को आकारा पर चढ़ा दिया था
 .. उसकी कीर्ति का परदा खोल दिया
- ४८ मेरा बेड़ा आप ही पाग लगा सकते हैं
 .. मृग्या भाग लेने गए थे, पंगुश्वरा मिल गई
- ४९ माता-पिता फूले न समाए
- ५३ मैं कृष्ण को सुहृद न खालने देता था
 .. ऊच-नीच सुभाई
- ५३ न्योगियों पर बल डालना
- ५५ न्याय से जौ गर भी पीछे नहीं हटता
 .. चलती हुई न्याय की चक्री में पिम्पना
- ५७ मानो उसका जाग्रत विवेक भीतर से भाँक रहा हों
- ६१ वह ज़रूरत से ज्यादा बढ़ा जा रहा था
- ६२ पाँसा पलट गया
- ६३ तैमूर अब मैदान का शेर नहीं, कालीन का शेर हो
 गया है
 .. खैतों-खलियानों की होली जलाना
- ६६ ईसाइयों के हाथ-पाँव फूले हुए थे
- ६८ वह कई बार तैमूर से शोखियाँ कर चुका है
- ७५ बुजुर्गी को अपने चारों तरफ लपेटे हुए
 .. अँगरेज को देखकर आँखें चिछा देने थे
- ७८ उनकी सनक से छुटकारा आसान न था
- ८१ इस ज़ग-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान
 हो गई

- १० मुठभेड़ करना
 १२ खिल्ली उड़ाना
 १४ शरण गहना
 ,, मन के ज्वार को शांत करना
 १६ गात में एक सिहरन लहराई
 १७ युवती का साहस चुक गया
 १०१ यह मखमल-विल्ला मार्ग नहीं है
 १०३ कूच करना
 १०७ पानी पर अधर तैर रही थी
 ११५ औंधे मुंह गिरना
 ११८ तरंगी लहरों की ताल पर नाचने लगी
 १२१ एक क्षीण हास्य-रेखा उनके ओठों पर दौड़ गई
 १२८ अटूट सुख-नींद सो गया
 १४४ वह मंत्रमुग्ध सरीखी हो गई
 ,, चोरी करके सीनाजोरी करना
 ,, बातों में ज़र्मान और आत्ममान के कुलात्रे मिलाना
 १४५ चित्त पर आशा की एक रेखा खिंच गई
 १६६ मणि-कांचन का संयोग कर दिया
 ,, दर्शक-गण चित्रलिखित से हों रहे
 १७६ भागने की तरकीब लगाना
 १८० दिन पहाड़ हो गए
 १८१ हमांगी भापा मौन थी
 १८४ घर आकर देखा, तो ब्रह्मा की सृष्टि ही बदल गई थी

- १८४ घर में भूँजी भाँग भी न थी
 १९० अपने जीवन के शमाव का परदा खोलने से हिचकती थी
 १९२ आँखें चढ़ाना
 ,, खिंचा रहना
 १९४ विल्ली ने गाम्ता काटा था
 २११ उस महाकाल के भ्रधकते हुए स्वप्न में कृदने से समझाता
 २१३ उसके नन्हे नन्हे पंग पक गग
 २२३ जो कुल्लु नकदी पास थी
 २२४ मूल्य आँकना
 २२५ ताशे पिट रहे थे
 २२६ बंदूक की गोली की तरह गुजर गया
 २३० आँखें चमकी
 २३१ मस्तिष्क चौखला उठा
 ,, उदार हृदय नाच उठा
 २३५ लहू वहाकर मिलता है
 ,, जान मार कर कमाता हूँ
 ,, पग पग पग उपाधियाँ हैं
 ,, पेसा-वैसा समाचार
 २३६ आँख की पुतली
 ,, डोरी ढीली छोड़ दी
 २३७ धीरज छूट गया
 ,, रुपयों से घर भर देते हैं
 ,, बाल पक गये

- २३८ दारिद्र्य कट जाय
 ,, मुख से फूल विखरते थे
 ,, श्रोताओं के मस्तिष्क को अपनी गक्तियों से खुवासित
 कर देते थे
 ,, तेरी वाणी में मोहिनी है
 ,, इस शौक को कोसा था
- २३९ अधिकार भर देती थी
 ,, विचार सताने लगे
 ,, चक्र काटकर-धूम घुमाकर
- २४० दिल उल्ललने लगा
 ,, जीवन के भविष्य में आशा की ललित लता लहलहानी
 दिखाई दी
 ,, लपके लपके दरवाजे पर गये
- २४१ स्वाद ले लेकर
 ,, राम राम करके
 ,, आशा की हरी भरी भूमि सामने आई
- २४२ छानी में किस्मी ने मुक्का मारा
- २४४ पानी पानी हो गए
 ,, मैदान मार लिया
 ,, बात का हख बदलने को बोले
- २४६ धूम मच गई
 ,, प्रथम श्रेणी के सम्पादकों की पंक्ति में ला बिटाया
 ,, मन को मुग्ध कर रही थी

- २४७ उर्दू-साहित्य का स्मिर ऊँचा कर दिया है
 ,, आनन्द से उछल पड़े
 ,, जीवन एक आनंदमय यात्रा प्रतीत होती थी
- २४८ आम्र-पल्लवों में बैठकर गाने वाली जयामा
 ,, भाग्य ने पाँमा पलट दिया
- २४९ इम ताक में थीं
 ,, हाथों ने तालियों से स्वागत किया
- २५० तन में आग लग गई
 ,, उनसे जलते थे
 ,, हृदय धड़कने लगा
- २५१ कलकें छोकरे
 ,, यह सौदा आपको बहुत महँगा पड़ेगा
- २५२ अपूर्व तेज की आभा दमकने लगी
- २५४ थैली का मुँह खोल दिया
- २५८ चुभती दृष्टि से देखा
- २५९ जलाने के लिए आप हैं
 ,, सकुचाए हुए
- २६३ अपने अर्थ को टटोलता था
- २६४ उसके अधरों से मुस्कान निकली
- २६५ होठों में ऐसी माधुरी रखकर
- २६६ श्याम मेघ, आकाश से वारिसिंचन कर रहे थे

गल्प-पारिजात में आए हुए कतिपय
ध्यान देने योग्य वाक्य तथा संदर्भ

४४

- ३ और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं ।
- ४ यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं । चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन माग करती हुई ।
- ६ नगर-कोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस ज़लज़ले होते हैं ।
- ४० मानव-रक्त का प्रवाह, संगीत का प्रवाह नहीं, रस का प्रवाह नहीं—वह एक बीभत्स दृश्य है, जिसे देखकर आँखें मुँह फेर लेती हैं, हृदय सिर झुका लेता है ।
- ४१ अगर तलवार ही सभ्यता का प्रमाणपत्र होती, तो गाल जानि रोमनों से कहीं अधिक सभ्य होती ।

- ४३ मैं तुम्ह से पूछता हूँ, अगर वह लोग जो खुदा के सिवा और किर्मी के सामने सिजदा नहीं करते, जो रमूले-पाक को अपना नेता समझते हैं, मुसलमान नहीं हैं तो कौन मुसलमान है ?
- ४४ यह वीर तुर्कों का ही आत्मोत्सर्ग है, जिसने यूरोप में इस्लाम की तौहीद फैलाई ।
- ५५ एक दिन तुम्हें भी परवरदिगाह के सामने अपने कर्मों का उत्तर देना पड़ेगा और तेरी कोई हीलहुज्जत न सुनी जायगी ।
- ४५ वह दार्शनिक न था, जो सत्य में भी शंका करता है । वह सरल सैनिक था, जो असत्य को भी अपने विश्वास से सत्य बना देता है ।
- ५१ यौवन की आँधी और लालसाओं के तूफान में भी वह चौबीस वर्षों की वीरवाला अपने हृदय की संपत्ति लिए अटल और अजेय खड़ी थी, मानों सभी युवक उसके सगे भाई हैं ।
- ५६ जब तुम अपने मुश्की घोड़े पर प्रतीक्षा में बैठी रहती हैं ।
- ५७ नैमूर की उम्र कठोर, विकृत, शुष्क, हिंसात्मक मुद्रा में उसे एक ..विवेक भीतर से झॉक रहा हो ।
- ६३ उम्र वक्त तो उम्मी की जीत होती है जो मानवरक्त का रंग खेले. . बस्तियों को उजाड़ दे ।

- ६७ यह तुम्हाग व्यक्तित्व है, जिसकी हरेक शाखा
और पत्ती एक सा भोजन पाती है ।
- ६८ उसकी युवती चेतना, पद और अधिकार को भूलकर
चहकती फिरती है ।
- ७४ वे शुद्ध तत्काल के प्रार्थी जीवित थे ।
- ७५ उधर हमारी भागत की कुल-लक्ष्मियाँ .कदम-कदम
बढ़ रही थीं ।
- ७७ जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैलकर संसृति के सागरे
अस्तित्व को डुबो दिया ।
- ७९ पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे
न दायों है, न बायों है ।
- ८७ जिसके जीवन की डोर विजय-विजय-विजय
फेर-फेर कर धन्य होंगे ।
- ८९ जब समय का ठिकाना नहीं है और ठिकाने का भी
ठिकाना नहीं है ।
- ,, मानों नीरव प्रकृति तीखी बना देना चाहती हो ।
- ९१ सिद्धियों, सफलताओं . आत्मनिमग्नता पाया करता है ।
- ९२ इन बहुमूल्य निठल्ली घड़ियों में
अपने डोरे समेट कर आ इकट्ठी होता है ।
- ,, नहीं तो उस खोखले उकताहट लूटती है ।
- १०० कर्म अनिवार्य है . जगत् का तंत्र ही ऐसा है ।

- १०१ उनका तो मार्ग . संकरा बन जाता है ।
- १११ यह युवक और युवती
... प्रचार करने जा रहे थे ।
- ११७ यह अधम शरीर सम्मान-सहित जीवित रहेगी ।
- ११८ सूर्यदेव ! अभी उस चिर-परिचित रज कण में मिल
जाना ही मेरी चरम गति है ।
- १२३ वह समय प्रभावशाली बौद्ध तांत्रिक बन जाता था ।
- १२९-१४० केवल निमित्त बनकर
आत्मतुष्टि करेगा ।
- १६७ इस मूक अभिनय का परदा चली गई ।
- १६६ एक महत्त्वपूर्ण अभिमान बड़ा विकट समय था ।
- २०९ दोनों बच्चे मोह जैसे थे ।
- २१३ दुर्भाग्य का मैदान ...पक्षपात ही करता है ।
- २२६ उसे ठीक फेंसा अनुभव हुआ. खोल देने पर उसे
होता है ।
- २३८ जब पढ़ते थे, उन दिनों.... सुवासित कर देते थे ।
- २४६ पत्र क्या थामुग्ध कर रही थी ।
- १४७-२४८ उन्हें जीवन एक आनंदमययात्रा .. पाँसा
पलट दिया ।
- २४९ यह कोई साधारण बात... लट्टू हो जायें ।
- २६३ माया केवल हँस देती थीपथ खोजना होगा ।
- २६५ माया की असावधानी से ...हुआ था मूढ़ ।